आरोग्य की कुंजी

गांधीजी

गांधीजी

अनुवादिका सुशीला नय्यर

पहली आवृत्ति, 1948
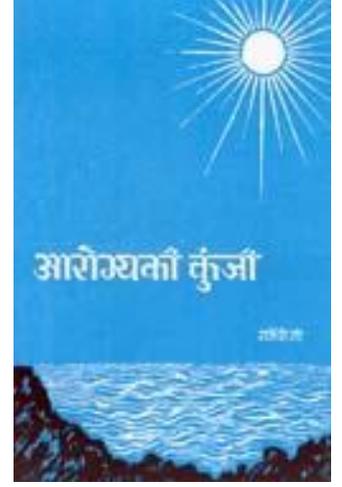
मुद्रक और प्रकाशक :

जितेन्द्र ठाकोरभाई देसाई,

नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद-380 014

प्रकाशक का निवेदन

गांधीजी जब 1942-’44 के बीच आगाखां महल, पूनामें नजरबन्द थे, तब उन्होंने ये प्रकरण लिखे थे। जैसा कि मूल पुस्तककी हस्तलिखित प्रति बतलाती है, उन्होंने 28-8-’42 को ये प्रकरण लिखने शुरू किये और 18-12-’42 को इन्हें पूरा किया था। उनकी दृष्टिमें इस विषयका इतना महत्त्व था कि वे हमेशा इन्हें प्रेसमें देनेसे हिचकिचाते रहे। वे धीरज रखकर इन प्रकरणोंको बार-बार तब तक दोहराते रहे, जब तक इस विषय पर प्रकट किये गये अपने विचारोंसे उन्हें पूरा सन्तोष न हो गया। अगर उनका हमेशा बढनेवाला अनुभव इन प्रकरणोंमे कोई सुधार करनेकी पेरणा देता, तो वैरग करनेका उनका इरादा था। मूल पुस्तक गुजरातीमें लिखी गई थी, जिसका हिन्दी और अंग्रेजी अनुवाद गांधीजीने अपनी रहनुमाईमें डॉ. सुशीला नय्यरसे कराया था। घटा-बढाकर अंतिम रुप देनेकी दृष्टिसे गांधीजीने इन दोनें अनुवदोंको देख भी लिया था।

इसलिए पाठक यह मान सकते हैं कि तन्दुरुस्तीके महत्त्वपूर्ण विषय पर गांधीजी अपने देशवासियोंसे और दुनियासे जो कुछ कहना चाहते थे, उसका अनुवाद खुद उन्होंने ही किया है। ईश्वरकी और उसके प्राणियोंकी सेवा गांधीजीके जीवनका पवित्र मिशन था और तन्दुरुस्तीके प्रश्नका अध्ययन उनकी दृष्टिमें उसी सेवाका एक अंग था।

अहमदाबाद, 24-7-’48

प्रस्तावना

‘आरोग्यके विषयमें सामान्य ज्ञान’ शीर्षकसे ‘इण्डियन ओपीनियन’ के पाठकोंके लिए मैंने कुछ प्रकारण 1906 के आसपास दक्षिण अफ्रिकामें लिखे थे। बादमें वे पुस्तकके रूपमें प्रकट हुए। हिन्दुस्तानमें यह पुस्तक मुश्किलसे ही कहीं मिल सकती थी। जब मैं हिन्दुस्तान वापस आया उस वक्त इस पुस्तककी बहुत माँग हुई। यहाँ तक कि स्वामी अखंडानन्दजीने उसकी नई आवृत्ति निकालनेकी इज़ाजत माँगी और दूसरे लोगोंने भी उसे छपवाया। इस पुस्तकका अनुवाद हिन्दुस्तानीकी अनेक भाषाओंमें हुआ और अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकट हुआ। यह अनुवाद पश्चिममें पहुँचा और उसका अनुवाद युरोपकी भाषाओंमें हुआ। परिणाम यह आया कि पश्चिममें या पूर्वमें मेरी और और कोई पुस्तक इतनी लोकप्रिय नहीं हुई, जितनी कि यह पुस्तक हुई। उसका कारण मैं आज तक समझ नहीं सका। मैंने तो ये प्रकरण सहज ही लिख डाले थे। मेरी निगाहमें उनकी कोई खास क़दर नहीं थी। इतना अनुमान मैं ज़रूर करता हूँ कि मैंने मनुष्यके आरोग्यको कुछ नये ही स्वरूपमें देखा है और इसलिए उसकी रक्षाके साधन भी सामान्य बैद्यों और डॉक्टरोंकी अपेक्षा कुछ अलग ढंगसे बताये हैं। उस पुस्तककी लोकप्रियता यह कारण हो सकता है।

मेरा यह अनुमान ठीक हो या नहीं, मगर उस पुस्तककी नई आवृत्ति निकालनेकी माँग बहुतसे मित्रने की है। मूल पुस्तकमें मैंने जिन विचारोंको रखा है उनमें कोई परिवर्तन हुंआ है या नहीं, यह जाननेकी उस्तुकता बहुतसे मित्रोंने बताई है। आज तक इस इच्छाकी पूर्ति करनेका मुझे कभी व्रक्त ही नहीं मिला। परन्तु आज ऐसा अवसर आ गया है। उसका फ़ायदा उठा कर मैं यह पुस्तक नये सिरेसे लिख रहा हूँ। मूल पुस्तक तो मेरे पास नहीं है। इतने वर्षोके अनुभवका असर मेरे विचारों पर पड़े बिना नहीं रह सकता। मगर जिन्होंने मूल पुस्तक पढ़ी होगी, वे देखेंगे कि मेरे आजके और 1906 के विचारोंमें कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है।

इस पुस्तकको नया नाम दिया है। ‘आरोग्य कुंजी’। मैं यह उम्मीद दिला सकता हूँ कि इस पुस्तकको विचारपूर्वक पढ़नेवालों और इसमें दिये हुए नियमों पर अमल करनेवालोंको आरोग्यकी कुंजी मिल जायगी और उन्हें डॉक्टरों पर अमल करनेवालोंको आरोग्यकी कुंजी मिल जायगी और उन्हें डॉक्टरों और वैद्योंका दरव़ाजा नहीं खटखटाना पड़ेगा।

मो. क. गांधी

आगाखां महल,

यरवडा, 27-8-’42

पहला भाग

1. शरीर

(28-8’42)

शरीरके परिचयसे पहले आरोग्य किसे कहते हैं, यह समझ लेना ठीक होगा। आरोग्यके मानी हैं तन्दुरुस्त शरीर। जिसका शरीर व्याधि-रहित है, जिसका शरीर सामान्य काम कर सकता है, अर्थात् जो मनुष्य बगैर थकानके रोज दस-बारह मील चल सकता है, जो बगैर थकानके सामान्य मेहनत-मज़दूरी कर सकता है, सामान्य खुराक पचा सकता है, जिसकी इन्द्रियां और मन स्वस्थ हैं, ऐसे मनुष्यका शरीर तन्दुरुस्त कहा जा सकता है। इसमें पहलवानों या अतिशय दौड़ने-कूदनेवालोंका समावेश नहीं है। ऐसे असाधारण बलवाले व्यक्तिका शरीर रोगी हो सकता है। ऐसे शरीरका विकास एकांगी कहा जायगा।

इस आरोग्यकी साधना जिस शरीरको करनी है, उस शरीरका कुछ परिचय आवश्यक है।

प्राचीन कालमें कैसी तालीम दी जाती होगी, यह तो विधाता ही जाने या शोध करनेवाले लोग कुछ जानते होंगे। आधुनिक तालीमका थ़ेडा-बहुत परिचय हम सबको है ही। इस तालीमका हमारे दिन-प्रतिदिनके जीवनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता। शरीरसे हमें सदा ही काम पड़ता है, मगर फिर भी आधुनिक तालीमसे हमें शरीरका ज्ञान नहीं-सा होता है। अपने गांव और खेतोंके बारेमें भी हमारे ज्ञानके यही हाल हैं। अपने गांव और खेतोंके बारेमें तो हम कुंछ भी नहीं जानते, मगर भूगोल और खगोलको तोतेकी तरह रट लेते हैं। यहाँ कहनेका अर्थ यह नहीं है कि भूगोल और खगोलका कोई उपयोग नहीं है, मगर हरएक ચ़ीज अपने स्थान पर ही अच्छी लगती है। शरीरके, घरके, गांवके, गांवके चारों ओरके प्रदेशके, गांवके खेतोंमें पैदा होनेवाली वनस्पतियोंके और गांवके इतिहासके ज्ञानका पहला स्थान होना चाहिये। इस ज्ञानके पाये पर खड़ा दूसरा ज्ञान जीवनमें उपयोगी हो सकता है।

शरीर पंचभूतका पुतला है। इसीसे कविने गाया है :

पवन, पानी, पृथ्वी, प्रकाश और आकाश,

पंचभूतके खलसे बना जगतका पाश।

(29-8-’42)

2. हवा

(31-8-'42)

हवा शरीरके लिए सबसे ज़रूरी चाज है। इसीलिए ईश्वरने हवाको सर्वव्यापी बनाया है और वह हमें बिना किसी प्रयत्नके मिल जाती है।

हवाको हम नाकके द्वारा फेफडोंमे भरते हैं। फेफड़े धौंकनीका काम करते हैं। वे हवाको अन्दर खींचते हैं। और बाहर निकालते हैं। बाहरकी हवामें प्राणवायु होती है। वह न मिले तो मनुष्य जिन्दा नहीं रह सकता। जो हवा फेफड़ोसे बाहर आती है, वह जहरीली होती है। अगर यह जहरीली हवा तुरन्त इधर-उधर न फैल जाये, तो हम मर जायें। इसलिए घर ऐसा होना चाहिये, जिसमें हवा अच्छी तरह आ-जा सके और सूर्य-प्रकाशके आनेका रास्ता भी हो।

हवाका काम रक्तकी शुध्दि करना है। मगर हमें फेफड़ोंमें हवा भरना और उसे बाहर निकालना ठीक तरहसे नहीं आता। इसलिए हमारे रक्तकी शुध्दि भी पूरी तरह नहीं हो पाती। कई लोग मुंहसे श्वास लेते हैं। यह बुरी आदत है। नाकमें कुदरतने एक तरहकी छलनी रखी है, जिससे हवा छनकर भीतर जाती है, और साथ ही गरम होकर फेफडोंमें पहुँचती है। मुंहसे श्वास लेनेसे हवा न तो स़ाफ होती है और न गरम ही हो पाती है।

इसलिए हर एक मनुष्यको चाहिये कि वह प्राणायाम सीख ले। यह क्रिया जितनी आसान है, उतनी ही आवश्यक भी है। प्राणायाम कई तरहके होते हैं। उन सबमें उतरनेकी यहां आवश्यकता नहीं है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि उनका कोई उपयोग नहीं है। मगर जिस मनुष्यका जीवन नियम-बध्द है, उसकी सब क्रियायें सहज रुपसे होती हैं। इससे जो लाभ होता है, वह अनेक प्रक्रियाओंके करनेसे भी नहीं होता।

चलते, फिरते और सोते व़क्त अगर लोग अपना मुंह बन्द रखे, तो नाक अपना काम अपने-आप करेगी ही। सुबह उठकरी जैसे हम मुंह साफ करते हैं, वैसे ही हमें नाक भी स़ाफ करनी चाहिये। नाकमें मैल हो तो उसे निकाल डालना चाहिये। उसके लिए उत्तमसे उत्तम वस्तु साफ पानी है। जो ठंडा पानी सहज न कर सके, वह कुनकुना पानी उस्तेमाल करे। हाथमें या एक कटोरेमें पानी लेकर उसे नाकमें चढ़ाना चाहिये। नाकके एक छेदसे चढ़ाकर दूसरेसे हम निकाल सकते हैं और नाकके द्वारा पानी पी भी सकते हैं।

फेफडोंमें शुध्द हवा ही भरनी चाहिये। इसलिए रातको आकाशके नीचे या बरामदे में सोनेकी आदत डालना अच्छा है। हवा से सरदी लग जायगी, यह डर नहीं रखना चाहिये। ठंड लगे तो ज़्यादा कपड़े हम ओढ़ सकते हैं। ओढनेका कपडा गले से ऊपर नहीं जाना चाहिये। अगर सिर ठंडको बरदास्त न कर सके तो उस पर एक रुमाल बांध लेना चाहिये। मतलब यह कि नाक को, जो कि हवा लेनेका द्वार है, कभी ढंकना नहीं चाहिये।

सोते समय दिनके कपड़े उतार देने चाहिये। रातको कम कपड़े पहनने चाहिये और वे ढीले होने चाहिये। शरीरको चद्दरसे ढंके तो रखना ही है, इसलिए वह जितना खुला रहे उतना ही अच्छा है। दिनमें भी कपड़े जितने ढीले पहने जायं उतना ही अच्छा है।

हमारे आसपास की हवा हमेशा शुध्द ही होती है, ऐसा नहीं होता। और न सब जगहकी हवा एकसी ही होती है। प्रदेशके साथ हवा भी बदलती है। प्रदेशका चुनाव हमारे हाथमें नहीं होता। मगर घरका चुनाव थोड़ा-बहुत हमारे हाथमें ज़रूर रहता है; और रहना भी चाहिये। सामान्य नियम यह हो सकता है कि घर ऐसी जगह ढूंढ़ा जाय, जहां बहुत भीड़ न हो, आसपास गंदगी न हो और हवा और प्रकाश ठीक-ठीक मिल सकें।

3. पानी

(1-9-’42)

शरीरको जिन्दा रखनेके लिए हवाके बाद दूसरा स्थान पानीका है। हवाके बिना मनुष्य थोड़े क्षण तक जिन्दा रह सकता है और पानीके बिना थोड़े दिन तक। पानी इतना आवश्यक है, इसलिए ईश्वरने हमें खूब पानी दिया है। बिना पानीकी मरुभूमिमें मनुष्य बस ही नहीं सकता। सहाराके रेगिस्तान जैसे प्रदेशोंमें बस्ती दिखाई ही नहीं पड़ती।

तन्दुरुस्त रहनेके लिए हरएक मनुष्यको चौबीस घंटेमें पांच पौंड पानी या प्रवाही द्रव्यकी आवश्यकता है। पीनेका पानी हमेशा स्वच्छ होना चाहिये। बहुत जगह पानी स्वच्छ नहीं होता। कुएंका पानी पीनेमें हमेशा खतरा रहता है। उथले (कम गहरे) कुएं और बावड़ीका पानी पीनेके लायक नहीं होता। दुःखकी बात यह है कि हम देखकर या चखकर हमेशा यह नहीं कह सकते कि कोई पानी पीने लायक है या नहीं। देखनेमें और चखनमें जो पानी अच्छा लगता है, वह दर असल जहरीला हो सकता है। इसलिए अनजाने घर या अनजाने कुएंका पानी न पीनेकी प्रथाका पालन करना अच्छा है। बंगालमें तालाब होते हैं। उनका पानी अकसर पीनके लायक नहीं होता। बड़ी नदियोंका पानी भी पीनेके लायक नहीं होता, खास करके जहां नदी बस्तीके पाससे ग़ुंजरती है और जहां उसमें स्टीमर और नावें आया-जाया करती हैं। ऐसा होते हुए भी यह सच्ची बात है कि करोड़ों मनुष्य इसी प्रकारका पानी पीकर गुजारा करते हैं। मगर यह अनुकरण करने जैसी ज़ीज हरग़िज नहीं है। कुदरतने मनुष्यको जीवन-शक्ति काफी प्रमाणमें न दी होती, तो मनुष्य-जाति अपनी भूलों और अपने अतिरेकके कारण कबकी लोप हो गयी होती। हम यहां पानीका आरोग्यके साथ क्या सम्बन्ध है, इसका विचार कर रहे हैं। जहां पानीकी शुध्दताके विषयमें शंका हो, वहाँ पानीको उबाल कर पीना चाहिये। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्यको अपने पीनेका पानी साथ लेकर घूमना चाहिये। असंख्य लोग धर्मके नाम पर मुस़ाफिरीमें पानी नहीं पीते। अज्ञानी लोग जो ज़ीज धर्मके नाम पर करते हैं, आरोग्यके नियमोंको जाननेवाले वही ज़ीज आरोग्यके ख़ातिर क्यों न करें? पानीको छाननेका रिवाज ताऱीफ करने लायक है। इससे पानीमें रहा कचरा निकल जाता हैं, लेकिन पानीमें रहे सूक्ष्म जन्तु नहीं निकलते। उनका नाश करनेके लिए पानीको उबालना ही चाहिये। छाननेका कपडा हमेशा स़ाफ होना चाहिये। उसमें छेद न होने चाहिये।

4. ख़ुराक

(2-9-’42)

हवा और पानीके बिना आदमी जिन्दा ही नहीं रह सकता, यह बात सच है। मगर जीवनको टिकानेवाली चीज़ तो ख़ुराक ही है, अन्न मनुष्यका प्राण है। खुराक तीन प्रकारकी होती है - मांसाहार, शाकाहार और मिश्राहार। असंख्य लोग मिश्राहारी हैं। ‘मांस’ में मछली और पक्षी भी आ जाते हैं। दूधको हम किसी भी तरह शाकाहारमें नहीं गिन सकते। सच पूछा जाय तो वही मांसका ही एक रूप है। मगर लौकिक भाषामें वह मांसाहारमें नहीं गिना जाता। जो गुण मांसमें हैं वे अधिकांश दूधमें भी हैं। डॉक्टरी भाषामें वह प्राणिज खुराक - एनिमल फूड - माना जाता हैं। डॉक्टरी अंडे सामान्यतः मांसाहारमें गिने जाते हैं। मगर दरअसल वे मांस नहीं हैं। आजकल तो अंडे ऐसे तरीक़ेसे पैदा किये जाते हैं कि मुर्गीको देखे बिना भी अंडे देती है। इन अंडोंमे चूजा कभी बनताही नहीं है। इसलिए जिन्हें दूध पीनेमें कोई संकोच नहीं, उन्हें इस प्रकारके अंडे खानेमें कोई संकोच नहीं होना चाहिये।

डॉक्टरी मतका झुकाव मुख्यतः मिश्राहारीकी ओर है। मगर पश्चिममें डॉक्टरोंका एक बड़ा समुदाय ऐसा है, जिसका यह दृढ़ मत है कि मनुष्यके शरीरकी रचनाको देखते हुए वह शाकाहारी ही लगता है। उसके दांत, आमाशय इत्यादि उसे शाकाहारी सिध्द करते हैं। शाकाहारमें फलोंका समावेश होता है। फलोंमें ताज़े फल और सूखा मेवा अर्थात् बादाम, पिस्ता, अखरोट, चिलगोजा इत्यादि आ जाते हैं।

मैं शाकाहारका पक्षपाती हूँ। मगर अनुभवसे मुझे यह स्वीकार करना पड़ा हैं कि दूध और दूधसे बननेवाले पदार्थ जैसे मक्खन, दहीं वगैराके बिना मनुष्य-शरीर पूरी तरह टिक नहीं सकता। मेरे विचारोंमें यह महत्त्वका परिवर्तन हुआ है। मैंने दूध-घीके बगैर छह वर्ष निकाले हैं। उस व़क्त मेरी शक्तिमें किसी तरहकी कमी नहीं आयी थी। मगर अपनी मूर्खताके कारण मैं 1917 में सख्त पेचिशका शिकार बना। शरीर हाड़पिंजर हो गया। मैंने हठपूर्वक दवा नहीं ली; और उतने ही हठसे दूध या छाछ भी लेनेसे इनकार किया। शरीर किसी तरह बनता ही नहीं था। मैंने दूध न लेनेका व्रत लिया था। मगर डॉक्टर कहने लगा - ‘‘यह व्रत तो आपने गाय और भैंसके दूधको नजरमें रखकर लिया था।’’ ‘‘बकरीका दूध लेनेमें आपको कोई हर्ज नहीं होना चाहिये’’ - मेरी धर्मपत्नीने डॉक्टरका समर्थन किया और मैं पिघला। सच कहा जाय तो जिसने गाय-भैंसके दूधका त्याग किया है, उसे बकरी वगैराका दूध लेनेकी छूट नहीं होनी चाहिये: क्योंकि उस दूधमें भी पदार्थ तो वही होते हैं। सि़र्फ मात्राका ही फरक होता है। इसलिए मेरे व्रतके केवल अक्षरोंका ही पालन हुआ है, उसकी आत्माका नहीं।

जो भी हो, बकरीका दूध तुरन्त आया और मैंने वह लिया। लेते ही मुझमें एक नया चेतन आया, शरीरमें शक्ति आयी और मैं खाटसे उठा। इस अनुभव परसे और ऐसे दूसरे अनेक अनुभवों परसे मैं लाचार होकर दूधका

पक्षपाती बना हूँ। मगर मेरा यह दृढ़ मत है कि असंख्य वनस्पतियोंमें कोई न कोई ऐसी ज़रूर होगी, जो दूध और मांसकी आवश्यकता अच्छी तरह पूरी कर सके और उनके दोषोंसे मुक्त हो।

मेरी दृष्टिसे दूध और माँस लेनेमें दोष तो है ही। मांसके लिए हम पशु-पक्षियोंका नाश करते हैं; और मांके दूधके सिवा दूसरा दूध पीनेका हमें अधिकार नहीं है। नैतिक दोषके सिवा केवल आरोग्यकी दृष्टिसे भी इनमें दोष हैं। दोनोंमें उनके मालिकके दोष आ ही जाते हैं। पालतू पशु सामान्यतः पूरे तन्दुरुस्त नहीं होते। मनुष्यकी तरह पशुओंमे भी अनेक रोग होते हैं। अनेक परीक्षायें करनेके बाद भी कई रोग परीक्षककी नज़रसे छूट जाते है। सब पशुओंकी अच्छी तरह परीक्षा करवाना असंभव लगता है। मेरे पास एक गोशाला है। उसके लिए मित्रोंकी मदद आसानीसे मिल जात है। परन्तु मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि मेरी गोशालामें सब पशु निरोगी ही हैं। इससे उलटे यह देखनेमें आया है कि जो गाय निरोगी मानी जाती थी वह अन्तमें रोगी सिध्द हुई। इसका पता चलनेसे पहले तो उस रोगी गायके दूधका उपयोग होता ही रहता था।

सेवाग्राम-आश्रम आसपासके किसानोंसे भी दूध लेता है। उनके पशुओंकी परीक्षा कौन करता है? उनका दूध निर्दोष है या नहीं, इसकी परीक्षा करना कठिन है। इसलिए दूध उबालनेसे जितना निर्दोष बन सके उससे ही काम चलाना होगा। दूसरी सब जगह आश्रमसे तो कम ही पशुओंकी परीक्षा हो सकती है। जो बात दूध देनेवाले पशुओंके लिए है वह मांसके लिए क़तल होनेवाले पशुओंके लिए तो है ही। परन्तु अधिकतर तो हमारा काम भगवान भरोसे ही चलता है। मनुष्य अपने आरोग्यकी बहुत चिंता नहीं रखता। उसने अपने लिए बैद्यो, डॉक्टरों और नीम-हकीमोंकी संरक्षक फ़ौज खड़ी कर रखी है, और उसके बल पर वह अपने-आपको सुरक्षित मानता है। उसे सबसे अधिक चिंता रहती है धन और प्रतिष्ठा वगैरा प्राप्त करनेकी। यह चिंता दूसरी सब चिंताओंको हज़म कर जाती है। इसलिए जब तक कोई पारमार्थिक डॉक्टर, वैद्य या हकीम लगनसे परिश्रम करके संपूर्ण गुणोंवाली कोई वनस्पति नहीं ढूंढ़ निकालता, तब तक मनुष्य दुग्धाहार या मांसाहार करता ही रहेगा।

अब जरा युक्ताहारके बारेमें विचार करें। मनुष्य-शरीरको स्नायु बनानेवाले, द्रव्योंकी आवश्यकता रहती हे। स्नायु बनानेवाले द्रव्य दूध, मांस, दालों और सूखे मेवोंसे मिलते हैं। दूध और मांससे मिलनेवाले द्रव्य दालों वगैराकी अपेक्षा अधिक आसानीसे पच जाते हैं और सर्वांशमें वे अधिक लाभदायक हैं। दूध और मांसमें दूध का दर्जा ऊपर है। डॉक्टर लोग कहते हैं कि जब मांस नहीं पचता, तब भी दूध पच जाता है। जो लोग मांस नहीं खाते, उन्हें तो दूधसे बहुत मदद मिलतह है। पाचनकी दृष्टीसे कच्चे अंडे सबसे अच्छे माने जाते हैं।

मगर दूध या अंडे सब कहांसे पायें? सब जगह ये मिलते भी नहीं। दूधके बारेमें एक बहुत ज़रूरी बात यहीं मैं कह दूं। मक्खन निकाला हुआ दूध निकम्मा नहीं होता। वह अत्यन्त क़ीमती पदार्थ है। कभी-कभी तो वह मक्खनवाले दूधसे भी अधिक उपयोगी होता है। दूधका मुख्य गुण स्नायु बनानेवाले प्राणिज पदार्थकी आवश्यकता पूरी करना है। मक्खन निकाल लेने पर भी उसका यह गुण क़ायम रहता है। इसके अलावा सबका

सब मक्खन दूधमे से निकाल सके, ऐसा यत्र तो अभी तक बना ही नहीं है; और बननेकी संभावना भी कम ही है।

पूर्ण या अपूर्ण दूधके सिवा दूसरे पदार्थोंकी शरीरको आवश्यकता रहती है। दूधसे दूसरे दर्जे पर गेहूं, बाजरा जुआर, चावल वगैरा अनाज रखे जा सकते हैं। हिन्दुस्तानके अलग अलग प्रान्तोंमें अलग अलग किस्मके अनाज पाये जाते है। कई जगहों पर केवल स्वादके खातिर एक ही गुणवाले एकसे अधिक अनाज खाये जाते है।

(4-9-'42)

जैसे कि गेहूं, बाजरा और चावल तीनों च़ीजें थ़ेडी थ़ेडी मात्रामें एक साथ खायी जाती हैं। शरीरके पोषणके लिए इस मिश्रणकी आवश्यकता नहीं है। इससे खुराककी मात्रा पर अंकुश नहीं रहता और आमाशयका काम अधिक बढ़ जाता है। एक समयमें एक ही तरहका अनाज खाना ठीक माना जायगा। इन अनाजोंमें से मुख्यत स्टार्च (निशस्ता) मिलता है। गेहूं न मिले और ब़ाजरा, जुआर इत्यादि अच्छे न लगें या अनुकूल न आयें, वहां चावल लेना चाहिये।

(6-9-'42)

अनाजमात्राको अच्छी तरह स़ाफ करके हाथ-चक्कीमें पीसकर बिना छाने इस्तेमाल करना चाहिये। अनाजकी भूसीमें सत्त्व और क्षार भी रहते हैं। दोनों बडे उपयोगी पदार्थ हैं। इसके उपरान्त भूसीमें एक ऐसा पदार्थ होता है, जो बगैर पचे ही निकल जाता है और अपने साथ मलकोभी निकलता है। चावलका दाना नाजुक होने के कारण ईश्वरने उसके ऊपर छिलका बनाया है, जो खानेके कामका नहीं होता। इसलिए चावलको कूटना पडता है। कुटाई उतनी ही करनी चाहिये जिससे ऊपरका छिलका निकल जावे। मशीनमें चावलके छिलकेके अलावा उसकी भूसी भी बिलकुल निकाल डाली जाती है। इसका कारण यह है कि चावलकी भूसीमें बहुत मिठास रहती है; इसलिए अगर भूसी रखी जाय तो उसमें सुसरी या कीड़ा पड़ जाता है। गेहूं और चावलकी भूसी निकाल दें, तो तो बाकी केवल स्टार्च रह जाता है; और भूसीमें अनाजका बहुत क़ीमती हिस्सा चला जाता है। गेहूं और चावलकी भूसीको अकेला पकाकर भी खाया जा सकता है। उसकी रोटी भी बन सकती है। कोकणी चावलोंका तो आटा पीसकर उसकी रोटी ही गरीब लोग खाते हैं। पूरे चावल पकाकर खानेकी अपेक्षा चावलके आटेकी रोटी शायद अधिक आसानीसे पचती हो और थोड़ी खानेसे पूरा सन्तोष भी दे।

हम लोगोंको दाल या शाकके साथ रोटी खानेकी आदत है। इससे रोटी पूरी तरह चबायी नाहीं जाती। स्टार्चवाले पदार्थोंको तिना हम चबायें और जितने वे लारके साथ मिलें उतना ही अच्छा है। यह लार स्टार्चके

पचनेमें मदद करती है। अगर खुराकको बिना जबाये हम निगल जायें, तो उसके पचनेमें लारकी मदद नहीं मिल सकती। इसलिए खुराकको उसी स्थितिमें खाना कि जिससे उसे चबाना पड़े, अधिक लाभदायक है।

स्टार्च-प्रधान अनाजोंके बाद स्नायु बांधनेवाली (प्रोटीनप्रधान) दालों इत्यादिको दूसरा स्थान दिया जाता है। दालके बिना ख़ुराकको सब लोग अपूर्ण मानते हैं। मांसाहारीको भी दाल तो चाहिये ही। जिस आदमीको मेहनत-म़जदूरी करनी पड़ती है और जिसे पूरी मात्रामें बिलकुल दूध नहीं मिलता। उसका गुजारा दलके बिना न चले यह मैं समझ सकता हूँ। मगर मुझे यह कहनेमें जरा भी संकोच नहीं होता कि जिन्हें शारीरिक काम कम करना पड़ता हैं-जैसे कि क्लार्क, व्यापारी, वकील, डॉक्टर या शिक्षक-और जिन्हें दूध पूरी मात्रामें मिल जाता है, उन्हें दालकी आवश्यकता नहीं है। सामान्यत दाल भारी खुराक मानी जाती है और स्टार्च-प्रधान अनाजकी अपेक्षा बहुत कम मात्रामें खायी जाती है। दालोंमें मटर और लोबिया बहुत भारी हैं। मूंग और मसूर हलके माने जाते हैं।

तीसरा दर्जा शाकभाजीको और फलोंको देना चाहिये। शाक और फल हिन्दुस्तानमें सस्ते होने चाहिये, मगर ऐसा नहीं है। वे केवल शरहियोंकी खुराक माने जाते हैं। गांवोंमें हरी तरकारी भाग्यसे ही मिलती है। और बहुत जगह फल भी नहीं मिलते। इस खुराककी कमी हिन्दुस्तानके लिए बड़ी शरमकी बात है। देहाती चाहें तो काफी शाकभाजी पैदा कर सकते हें। फलोंके पेड़ोंके बारेमें कठिनाई जरूर है, क्योंकि जमीनकी काश्त के कानन सख्त और ग़रीबोंको दबानेवाले हैं। मगर यह तो हमारे विषयसे बाहरकी बात हुई।

ताजी शाकभाजीमें पत्तोंवाली जो भी भाजी मिले वह क़ाफी मात्रामें हर ऱोज लेनी चाहिये। जो शाक स्टार्च-प्रधान है, उनकी गिनती यहाँ मैंने शाकभाजीमें नहीं की है। आलू, शकरकंद, रतालू और जमीकन्द स्टार्च-प्रधान शाक हैं। उन्हें अनाजकी पदी देनी चाहिये। दूसरे कम स्टार्चवाले शाक क़ाफी मात्रामें लेने चाहिये। ककड़ी,लूनोकी भाजी, सरसोंका साग, सोएकी भाजी, टमाटर इत्यादिको पकानेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। उन्हें साफ करके और अच्छी तरह धोकर थोडी मात्रामें कच्चा खाना चाहिये।

फलोंमें मौसमके जो फल मिल सकें वे लेने चाहिये। आमके मौसममें आम, जामुन, इसी तरह अमरूद, पपीता, संतरा, अंगूर, मीठे नीबू (शरबती या स्वीट लाइम), मोसम्बी वगैरा फलोंका ठीक-ठीक उपयोग करना चाहिये। फल खानेका सबसे अच्छा वक्त सुबहका है। सबेरे दूध और फलका नाश्ता करनेसे पूरा संतोष मिल जाता है। जो लोग खाना जल्दी खाते हैं, उनके लिए तो सबेरे केवल फल ही खाना अच्छा है।

केला अच्छा फल है। मगर उसमें स्टार्च बहुत है। इसलिए वह रोटीकी जगह लेता है। केला, दूध और भाजी संपूर्ण ख़ुराक है।

मनुष्यकी खुराकमें थोड़ी-बहुत चिकनाई की आवश्यकता रहती है। वह घी और तेलसे मिल जाती है। घी मिल सके तो तेलकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। तेल पचनेमें भारी होते हैं और शुध्द घीके बराबर गुणकारी नहीं होते। सामान्य मनुष्यके लिए तीन तोला घी क़ाफी समझना चाहिये। दूधमें घी आ ही जाता है। इसलिए

जिसे घी न मिल सके, वह तेल खाकर चर्बीकी मात्रा पूरी कर सकता है। तोलोमें तिलका, नारियलका और मूंगफलीका तेल अच्छा माना जाता है। तेल ताजा होना चाहिये। इसलिए देशी घानीका तेल मिल सके तो अच्छा है। जो घी और तेल आज बाजारमें मिलता है, वह लगभग निकम्मा होता है। यह दुःखकी और शरमकी बात है। मगर जब तक व्यापारमें कानून या लोक-िशक्षण्के द्वारा ईमानदारी दाखिल नहीं होती, तब तक लोगोंको सावधानी रखकर, मेहनत करके अच्छी और शुध्द च़ीजें प्राप्त करनी होंगी। अच्छी और शुध्द चीजके बदले कैसी भी मिले तो उससे कभी संतोष नहीं मानना चाहिये। बनावटी घी या खराब तेल खानेके बदले घी-तेलके बगैर ग़ुजारा करनेका निश्चय ज़्यादा पसन्द करने योग्य है।

जैसे ख़ुराकमें चिकनाईकी आवश्यकता रहती है, वैसे ही गुड और खांड़की भी। मीठे फलोंसे काफी मिठास मिल जाती है, तो भी तीन तोला गुड या खांड़ लेनेमें कोई हानि नहीं है। मीठे फल न मिलें तो गुड़ और खांड़ लेनेकी आवश्यकता रहती है। मगर आजकल मिठाई परजो इतना जोर दिया जाता है, वह ठीक नहीं है। शहरोंमें रहनेवाले बहुत ज़्यादा मिठाई खाते है, जैसे कि खीर, रबड़ी, श्रीखंड, पेंड़ा, बर्फी, जलेबी वगैरा मिठाईयां। ये सब अनावश्यक हैं और अधिक मात्रामें खानेसे नुकसान ही करती हैं। जिस देशमें करो़डों लोगोंको पेटभर अन्न भी नहीं मिलता, वहां जो लोग पकवान खाते हैं, वे चोरीका माल खाते हैं, यह कहनेमें मुझे तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं लगती।

जो मिठाईके बारेमें कहा गया है, वह घी-तेलको भी लागू होता है। घी-तेलमें तली हुई च़ीजें खाना बिलकुल ज़रूरी नहीं है। पूरी, लड्डू वगैरा बनानेमें घी खर्च करना विचारीपन है। जिन्हें आदत नहीं होती, वे लोग तो ये च़ीजें खा ही नहीं सकते। अंग्रेज जब हमारे देशमें आते हैं, तब हमारी मिठाइयां और धीमें पकाई हुई च़ीजें वे खा ही नहीं सकते। जो खाते हैं वे बीमार पड़ते हैं, यह मैंने कई बार देखा है। स्वाद तो स़िर्फ आदतकी बात है। भूख जू स्वाद पैदा करती है, वह छप्पन भोगोंमें भी नहीं मिलता। भूखा मनुष्य सूखी रोटी भी बहुत स्वादसे खायेगा। जिसका पेट भरा हुआ है, वह अच्छेसे अच्छा माना जानेवाला पकवान भी नहीं खा सकेगा।

अब हम यह विचार करें कि हमें कितना खाना चाहिये और कितनी बार खाना चाहिये। सब खुराक औषधिके रूपमें लेनी चाहिये, स्वादके खातिर हरग़िज नहीं। स्वाद मात्र रसमें होता है और रस भूखमें होता है। पेट क्या चाहता है, इसका पता बहुत कम लोगों को रहता है। कारण यह है कि हमें गलत आदतें पड़ गई है।

(8-9-'42)

जन्मदाता माता-पिता कोई त्यागी और संयमी नहीं होते। अनकी आदतें थोड़े-बहुत प्रमाणमें बच्चोंमें भी उतरती हैं। गर्भाधानके बाद माता जो खाती हैं, उसका असर बालक पर पड़ता ही है। फिर बाल्यावस्थामें माता बच्चेको अनेक स्वाद खिलाती है। जो कुछ वह स्वयं खाती है उसमें से बच्चेकोभी खिलाती है। परिणाम यह होता है कि बचनपसे ही पेटको बुरी आदतें पड़ जाती हैं। पड़ी हुई आदतोंको मिटा सकनेवाले विचारशील

लोग थोड़े ही होते हैं। पडी हुई आदतोंको मिटा सकनेवाले विचारशील लोग थोड़े ही होते हैं। मगर जब मनुष्यको यह भान होता है कि वह अपने शरीरका संरक्षक है और उसने शरीरको सेवाके लिए अर्पण कर दिया है। तब शरीरको स्वस्थ रखनेके नियम जाननेकी उसे इच्छा होती है और उन नियामेंका पालन करनेका वह महाप्रयास करता है।

(9-9-'42)

1. गायका दूध दो पौंड।

2. अनाज छह औंस अर्थात् 15 तोला (चावल, गेहूँ, बाजरा इत्यादि मिलाकर)।

3. शाकमें पत्ता-भाजी तीन औंस और दूसरे शाक पांचा औंस।

4. कच्चा शाक एक औंस।

5. तीन तोले घी या चार तोले मक्खन।

6. गुड़ या शक्कर तीन तोले।

7. ताज़े फल, जो मिल सकें, रुचि और आर्थिक शक्ति के अनुसार।

हर ऱोज दो नीबू लिये जायं तो अच्छा है। नीबूका रस निकालकर भाजीके साथ या पानीके साथ लेनेसे खटाईका दांतों पर खराब असर नहीं पड़ेगा।

ये सब व़जन कच्चे अर्थात् बिना पकाये हुए पदार्थोंके हैं। नमकका प्रमाण यहां नहीं दिया गया है। वह रुचिके अनुसार ऊपरसे लिया जा सकता है।

हमें दिनमें कितनी बार खाना चाहिये? भहुत लोग तो दिनमें केवल दो ही बार खाते हैं। सामान्यत तीन बार खनेकी प्रथा है- सबेरे काम पर बैठनेसे पहले, दोपहरको और शाम या रात्रिको। इससे अधिक बार खानेकी आवश्यकता नहीं होती। शहरोंमें रहनेवाले कुछ लोग समय-समय पर कुद न कुछ खाते ही रहते हैं। यह आदत नुकसानदेह है। आमाशयको भी आखिर आराम चाहिये।

5. मसाले

ख़ुराकका विवेचन करते समय मैंने मसालोंके बारेमें कुछ नहीं कहा। नमकको हम मसालोंका राजा कह सकते हैं, क्योंकि नमकके बिना सामान्य मनुष्य कुछ खा ही नहीं सकता। इसलिए नमकको 'सबरस' भी कहा गया है। शरीरको कई क्षारोंकी आवश्यकता रहती है। उनमें से नमक भी एक है। ये सब क्षार खुराकमें होते ही हैं। मगर उसे अशास्त्राrय तरीके से पकानेके कारण कुछ क्षारोंकी मात्रा कम हो जाती है, इसलिए वे ऊपरसे लेने पड़ते हैं। ऐसा ही एक अत्यन्त आवश्यक क्षार नमक है। इसलिए उसे थोड़े प्रमाणमें अलगसे खानेको मैंने पिछले प्रकारणमें कहा है।

मगर कई ऐसे मसाले, जिनकी शरीरको सामान्यत कोई आवश्यकता नहीं होती, केवल स्वादके खातिर या पाचन-शक्ति बढ़ानेके खातिर लिये जाते हैं,जैसे कि हरी या सूखी लाल मिर्च, काली मिर्च, हल्दी, धनिया, जीरा, राई, मेथी, हींग इत्यादि। इनके विषयमें पचास वर्षके निजी अनुभवसे मेरी यह राय बनी है कि शरारको पूरी तरह निरोग रखनेके लिए इनमें से एककी भी आवश्यकता नहीं है। जिसकी पाचन-शक्ति बिलकूल कम़जोर हो गई है, उसे केवल औषधिके रूपमें, अमुक समयके लिए, निश्चित मात्रामें मसाले लेने पड़े तो वह भले ले। मगर स्वादके खातिर तो ऐसी च़ीजका आग्रहपूर्वक निषेध ही मानना चाहिये। हर प्रकारका मसाला, यहां तक कि नमक भी, अनाज और शाकके स्वाभाविक रसका नाश करता है। जिस आदमीकी जीभ बिगड़ नहीं गई है, उसे स्वाभाविक रसमे जो स्वाद आता है, वह मसाला या नमक डालेके बाद नहीं आता। इसीलिए मैंने सूचना की है कि नमक लेना हो तो ऊपरसे लिया जाय। मिर्च तो पेठ और मुंहको जलाती है। जिसे मिर्च खानेकी आदत नहीं होती, वह शुरूमें तो उसे खा ही नहीं सकता। मैंने देखा है कि मिर्च खानेसे कई लोगोंका मुंह आ जाता है-उसमें था, अपनी भरजवानीमें इसी कारण मृत्युका शिकार भी बना था।

दक्षिण अफ्रीकाके हबशी तो मिर्चका छू भी नहीं सकते। ख़ुराकमें हल्दीका रंग वे बरदास्त ही नहीं कर सकते। अंग्रेज भी हमारे मसाले नहीं खाते हिन्दुस्तानमें आनेके बाद उन्हें आदत पड़ जाय तो बात अलग है।

6. चाय, काफी और कोको

इन तीनोंमें से एककी भी शरीरको आवश्यकता नहीं है। चायका प्रचार चीनसे हुआ कहा जाता है। चीनमें उसका खास उपयोग है। वहाँ पानी अकसर शुध्द नहीं होता। पानीको उबाल कर पिया जाय तो पानीका विकार दूर किया जा सकता है। किसी चतुर चीनीने चाय नामकी एक घास ढूंढ निकाली। वह घास बहुत थोडी मात्रामें भी उबलते पानीमें ड़ाली जाय, तो पानीका रंग सुनहरा हो जाता है। अगर इस तरह पानी सुनहरा रंग पकड़ ले, तो यह इस बातकी पक्की निशानी है कि पानी उबल चुका है। सुना है कि चीनमे लोग इसी तरह पानीकी परीक्षा करते हैं और वही पानी पीते हैं। चायकी दूसरी विशेषता यह है कि उसमें एक तरहकी खुशबू रहती है। ऊपर लिखे तरीकेसी बनी हुई चायको निर्दोष मान सकते हैं ऐसी चाय बनानेका यह तऱीका है ः एक चम्मच चाय छलनीमें डाली जाय। छलनीको चायके बर्तन पर रखा जाय छलनी पर धीरे-धीरे उबला हुआ पानी डाला जाय। नीचे जो पानी आये असका रंग सुनहरा हो, तो समझ लें कि पानी ठीक उबल चुका है।

झैसी चाय सामान्यत पी जाती है, उसका कोई गुण तो जाननेमें नहीं आया। मगर उसमें एक भारी दोष होता है। अर्थात् उसमें टेनीन होता है। टेनीनी ऐसी ज़ाज है, जो चमड़ेको पकानेके काममें आती है। यही काम टेनीनवाली चाय आमाशय (Stomach) में जाकर करती है।

(10-9-'42)

अमाशयके भीतर टेनीनकी तह चढनेसे उसकी पाचन-शक्ति कम होती है। इससे अपच होता है। कहाजाता है कि इंग्लैण्डमें तो असंख्य औरतें केवल कड़क चायकी आदतके कारण अनेक रोगोंकी शिकार बनती हैं। जिन्हें चायकी आदत हैं, उन्हें समय पर चाय न मिले, तो वे व्याकुल हो जाते हैं। चायका पानी गरम होता है। उसमें थोडी चीनी और थोडासा दूध डाला जाता है। यह चायका गुण जरूर माना जा सकता है। मगर दूधमें पानी डालकर उसे गरम किया जाये और उसमें चीनी या गुड़ डाला जाय, तो उससे वही काम अच्छी तरह निकलता है। उबलते पानीमें एक चम्मच शहद और आधा चम्मच नीबूका रस डाला जाय, तो सुन्दर पेय बन जाता है।

जो चायके विषयमें कहा गया है, वह कॉफीको भी थोडे-बहुत प्रमाणमें लागू होता है। कॉफीके बाबरेमें एक कहावत हैः

कफकाटन वायुहरण, धातुहीन बलक्षीण;

लोहूका पानी करे, दो गुण अवगुण तीन।

जो राय मैंने चाय और कॉफीके बारेमें दी है, उसे चाय, कॉफी और कोकोकी मददकी आवश्यकता नहीं रहती।

(7-10’42)

अपने लंबे अनुभव पर से मैं यह कह सकता हूँ कि तन्दुरुस्त मनुष्य को सामान्य खुराकसे पूरा संतोष मिल जाता है। मैंने उपर्युक्त तीनों ज़्चीजोंको खूब सेवन किया है। जब मैं ये ज़्चीजें लेता था, तब शरीरमें कुछ न कुछ बिगाड़ रहा ही करता था। इन चीजोंके त्यागसे मैंने कुछ भी खोया नहीं है, उलटा बहुत पाया है। जो स्वाद मुजे चाय इत्यादिमें मिलता था, उससे काही अधिक स्वाद अब मैं उबली हुई सामान्य भाजियोंके रसमें पाता हूं।

7. मादक पदार्थ

हिन्दुस्तानमें शराब, भांग, गांजा, तम्बाकू और अ़फीम मादक पदार्थोंमें गिने शराबमें इस देशमें पैदा होनेवाली ताड़ी और 'एरक' आते हैं; और परदेशसे आनेवाली शराबोंका तो कोई हिसाब ही नहीं है। ये सर्वथा त्याज्य हैं।

(8-10-'42)

शराब शराब पीकर मनुष्य अपना होश खो बैठता है और निकम्मा बन जाता है। जिसको शराबकी लत लगी होती है, वह खुद बरबाद होता है और अपने परिवारको भी बरबाद करता है। वह सब मर्यादायें त़ेड देता है।

एक पक्ष ऐसा है जो निश्चित (मर्यादित) मात्रामें शराब पीनेका समर्थन करता है और कहता है कि इससे फायदा होता है। मुझे इस दलीलमें कोई सार नहीं लगता। पर घड़ीभरके लिए इस दलीलको मान लें, तो भी अनेक ऐसे लोगोंके खातिर, जो कि मर्यादामें रह ही नहीं सकते, इस चीजका त्याग करना चाहिये।

पारसी भाइयोंने ताड़ीका बहुत समर्थन किया है। वे कहते हैं कि ताड़ीमें मादकता तो है, मगर ताड़ी एक खुराक है और दूसरी ख़ुराकको ह़जम करने में मदद पहुँचाती है। इस दलील पर मैंने खूब विचार किया है और इस बारेमें क़ाफी पढ़ा भी है। मगर ताड़ी पीनेवाले बहुतसे गरीबोंकी मैंने जो दूर्दशा देखी है, उस पर से मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूँ कि ताडीको मनुष्यकी खुराकमे स्थान देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

ताड़ीमें जो गुण माने गये हैं, वे सब हमें दूसरी खुराकमे मिल जाते हैं। ताड़ी खजूरीके सरसे बनती है। खजूरीके शुध्द रसमें मादकता बिलकुल नहीं होती। उसे नीरा कहते हैं। त़ाजी नीराको ऐसीकी ऐसी पीनेसे कई लोगोंको दस्त साफ आता है। मैंने खुद नीरा पीकर देखी है। मुझ पर उसका ऐसा असर नहीं हुआ। परन्तु वह ख़ुराकका काम तो अच्छी तरहसे देती है। चाय इत्यादिके बदले मनुष्य सवेरे नीरा पी ले, तो उसे दूसरा कुछ पीने या खानेकी आवश्यकता नहीं रहनी चाहिये। नीराको गन्नेके रसकी तरह पकाया जाय, तो उससे बहुत अच्छा गुड तैयार होता है।

(9-10-'42)

खजूरी ताड़की एक किस्म है ।हमारे देशमें अनेक प्रकारके ताड़ कुदरती तौर पर उगते है। उन सबमें से नीरा निकल सकती है। नीरा ऐसी चीज है जिसे निकालनेकी जगह पर ही तुरन्त पीना अच्छा है। नीरामें मादकता जल्दी पैदइा हो जाती है। इसलिए जहां उसका पुरन्त पायोग न हो सके, वहां उसका गुड़ बना लिया जाय तो वह गन्नेके गुड़की जगह ले सकता है। कई लोग मानते हैं कि ताड़-गुड़ गन्नेके गुड़की अपेक्षा अधिक मात्रामें

खाया जा सकता है। ग्रामोद्योग संघके द्वारा ताड़-गुड़का क़ाफी प्रचार हुआ है। मगर अभी और ज़्यादा मात्रामें इसका प्रचार होना चाहिये। जिन ताड़ोंके रससे ताड़ी बनाई जाती है, उन्होंसे गुड़ बनाया जाये, तो हिन्दुस्तानमें गुड़ और खांडकी कभी तंगी पैदा न हो और गरीबोंको सस्ते दाममें अच्छा गुड़ मिल सके। ताड़-गुडकी मिश्री और गरीबोंको सस्ते दाममें अच्छा गुड़ मिल सके। ताड़-गुडकी मिश्री और सक्कर भी बनाई जा सकती है। मगर गुड़ शक्कर या चीनीसे बहुत अधिक गुणकारी है। गुडमें जो क्षार हैं वे शक्कर या चीनीसे बहुत अधिक गुणकारी है। गुडमें जो क्षार हैं वे शक्कर या चीनेमें नहीं होते। जैसे बिना भूसीका आटा और बिना भूसीका चावल होता है, वैसे ही बिना क्षारकी शक्करको समझना चाहिये। अर्थात् यह कहा जा सकता है कि खुराक जितनी अधिक स्वाभाविक स्थितिमें खाई जाय, उतना ही अधिक पाषण उसमें से हमें मिलता है।

ताड़ीका वर्णन करते हुए मुझे स्वभावत नीराका उल्लेख करना पड़ा और उसके संबन्धमें गुड़का। मगर शराबके बारेमें मुझे अभी और कहना है। शराबसे पैदा होनेवाली बुराईका जितना कड़वा अनुभव मुझे हुआ है, मैं नहीं जानता कि उतना सार्वजनिक काम करनेवाले किसी और सेवकको हुआ होगा। दक्षिण अफ्रिकामें 'िगरमिट' (अर्ध-गुलामी) में काम करनेवाले हिन्दुस्तानियोंमें बहुतसे शराब पीनेके आदी होते थे। वहां यह कानून था कि हिन्दुस्तानी लोग शराब अपने घर नहीं ले जा सकते; जितनी पीना हो, शराबकी दुकान पर बैठकर पीयें। स्त्रियां भी शराबकी शिकार बनी होती थीं। उनकी जो दशा मैंने देखी है, वह अत्यन्त करुणाजनक थी। जो उसे जानता है वह कभी शराब पीनेका समर्थन नहीं करेगा।

वहांके हबशियोंको सामान्यत अपनी मूल स्थितिमें शराब पीनेकी आदत नहीं होती। कहा जा सकता है कि उनके मज़दूरवर्गका तो शराबने नाश ही कर दिया है। कई मज़दूर अपनी कमाई शराबमें स्वाहा करते दिखाई देते हैं। उनका जीवन पिरर्थक बन जाता है।

और अंग्रेजोंका? सभ्य माने जानेवाले अंगेजोंको मैंने गटारोंमे पड़े देखा है। यह अतिशयोक्ति नहीं है। लड़ाईके समय जिन गोरोंको ट्रान्सवाल छोड़ना पड़ा था, उनमें से एकको मैंने अपने घरमें रखा था। वह इन्जीनियर था। थियोसॉफिस्ट होते हुए भी उसे शराबकी लत थी। शराब न पी हो तब उसके सब लक्षण अच्छे रहते थे। लेकिन जब वह शराब पी लेता था, तब बिलकुल दीवाना बन जाता था। उसने शराब छोडनेका बहुत प्रयत्न किया, मगर जहां तक मैं जानता हूँ, वह अन्त तक इसमें सफल न हो सका।

दक्षिण अफ्रीकासे वापिस हिन्दुस्तानमें आकर भी मुझे शराबके दुखद अनुभव ही हुए हैं। कितने ही राजा-महाराजा शराबकी बुरी आदतके कारण बरबाद हो गये हैं और हो रहे हैं। जो उनके विषयमें सच है, वह थोड़े-बहुत

प्रमाणमें अनेक धनिक युवकोंको भी लागू होता है।

(10-10-’42)

मज़दूर-वर्गकी स्थितिका अभ्यास किया जाय, तो वह भी दयाजनक ही है। ऐसे कड़वे अनुभवोंके बाद मैं शराबका सख्त विरोधी बना हूँ, तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।

एक वाक्यमें यदि कहूँ तो शराबसे मनुष्य अपने शरीर, मन, और बुध्दिको क्षीण करता है और पैसा बरबाद करता है।

8. अफीम

जो टीका शराबखोरीके विषयमें की गई है, वही अ़फीम पर भी लागू होती है। दोनों व्यसनोंमें भेद ज़रूर है।

शराबका नशा जब तक रहता है मनुष्यको वह पागल बनाये रखता है। अ़फीम मनुष्यको जड़ बना देती है। अ़फीम आलसी हो जाता है, तन्द्रावश रहता है और किसी कामका नहीं रहता।

शराबखोरीके बुरे परिणाम हम ऱोज अपनी आंखोसे देख सकते हैं। अ़फीमका बुरा असर इस तरह प्रत्यक्ष नहीं दीखता। अ़फीमका जहरीला असर प्रत्यक्ष देखना हो तो उडीसा और आसाममें जाकर हम देख सकते हैं। बहां हजारों लोग इस दुर्व्यसनमें फंसे हुए दिखाई देते हैं। जो लोग इस व्यसनके शिकार बने हुए हैं, वे ऐसे लगते हैं मानों कब्रमें पैर लटकाकर बैठे हों।

मगर अ़फीमका सबसे खराब असर तो चीनमें हुआ कहा जाता है। चीनियोंका शरीर हिन्दुस्तानियोंसे ज़्यादा म़जबूत होता है। परन्तु जो अ़फीमके फंदेमें फंस चुके हैं, वे मुर्दे-से दिखाई देते हैं। जिसको अ़फीमकी लत लगी होती है, वह दीन बन जाता है और अ़फीम हासिल करनेके लिए कोई भी पाप करनेको तैयार हो जाता है।

चीनियों और अंगेजोंके बीच एक लड़ाई हुई थी, जो अ़फीमकी लड़ाईके नामसे इतिहासमें प्रसिध्द है। चीन हिन्दुस्तानकी अ़फीम लेना नहीं चाहता था, जब कि अंगेज जबरदस्ती चीनके साथ उस अ़फीमका व्यापार करना चाहते थे। इस लड़ाईमें हिन्दुस्तानका भी दोष था। हिन्दुस्तानमें बहुतसे अ़फीम ठेकेदार थे। इससे उन्हें अच्छी कमाई भी होती थी। हिन्दुस्तानको महसूलमें चीनसे करोड़ों रुपये मिलते थे। यह व्यापार प्रत्यक्ष रुपमें अनीतिमय था तो भी चला। अन्तमें इंग्लेंडमें भारी आन्दोलन हुआ हौर अ़फीमका यह व्यापार बन्द हुआ। जो च़ीज इस तरह प्रजाका नाश करनेवाली है, उसका व्यसन क्षणभरके लिए भी सहन करने योग्य नहीं है।

इतना कहनेके बाद भी यह स्वीकार करना चाहिये कि वैद्यक या चिकित्सा-शास्त्रमें अफीमका बहुत स्थान है। वह ऐसी दवा है जिसके बिना चल ही नहीं सकता। इसलिए अ़फीमका व्यसन मनुष्य स्वेच्छासे छ़ेड दे तभी उसका उध्दार हो सकेगा।

(11-10-’42)

चिकित्सा-शास्त्रमें उसका स्थान भले ही रहे। परन्तु जो च़ीज हम दवाके तौर पर ले सकते हैं वह व्यसनके तौर पर थोड़े ही ले सकते हैं? अगर लें तो वह ज़हरका काम करेगी। अ़फीम तो प्रत्यक्ष ज़हर ही है। इसलिए व्यसनके रुपमें वह सर्वथा त्याज्य है।

9. तम्बाकू

तम्बाकूने तो ग़जब ही ढ़ाया है। इसके पंजेसे कोई भाग्यसे ही छूटता है। सारा जगत एक या दूसरे रूपमें तम्बाकूका सेवन करता है। टॉल्स्टॉयने इसे व्यसनोंमे सबसे खराब व्यसन माना है। ऋषिका यह वचन ध्यान देने लायक है। उन्होंने तम्बाकू और शराब दोनोंका काफी अनुभव किया था और दोनोंकी हानियां वे स्वयं जानते थे। ऐसा होते हुए भी मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि शराब और अफीमकी तरह तम्बाकूके दुष्परिणाम प्रत्यक्ष रूपसे मैं स्वयं बता नहीं सकता। इतना जरूर कह सकता हूँ कि इसका एक भी फ़ायदा मैं नहीं जानता। जो इसका सेवन करते हैं उनके सिर इसका खर्च भी खूब पडता है। एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट तम्बाकू पर हर महीने पाँच पौंड अर्थात् 75 रूपये खर्च करता था। उसका महीनेका वेतन था 25 पौंड। दूसरे शब्दोंमे, अपनी कमाईका पांचवाँ भाग अर्थात् बीस प्रतिशत वह धुंमे ऊडा देता था।

तम्बाकू पीनेवालेकी विवेक-शक्ति इतनी मन्द पड़ जाती है कि वह तम्बाकू पीते समय अपने पड़ोसीका विचार नहीं करता। रेलगांडीमे मुसाफिरी करनेवालेंको इस चीजका क़ाफी अनुभव होता है। जो तम्बाकू नहीं पीते, वे तम्बाकूका धुआं सहन ही नहीं कर सकते। मगर पीनेवाला अकसर इस बातका विचार नहीं करता कि पासवालेकों क्या लगता होगा। इसके उपरान्त तम्बाकू पीनेवालोंको अकसर थूकना पड़ता है और वे बिना संकोच काही भी थूक देते हैं।

तम्बाकू पीनेवालेके मुंहसे एक तरहकी असह्य बदबू निकलती है। संभव है कि तम्बाकू पीनेवालेकी सूक्ष्म भावनायें मर जाती हें। और यह भी संभव है कि उन्हें मारनेके लिए ही मनुष्यने तम्बाकू पीना शुरू किया हो। इसमें तो शक है ही नहीं कि तम्बाकू पीनेसे मनुष्यको एक तरहका नशा चढ़ जाता है और उस नशेमें वह अपनी चिन्ताओं और दुःखोंको भूल जाता है। टॉल्स्टॉय अपने एक उपन्यासमें एक पात्रसे भयंकर काम करवाते हैं। यह काम करनेसे पहले उसे शराब पिलवाते हैं। इस पात्रको एक भयंकर खून करना है। मगर शराबके नशेमें भी उसे खून करने में संकोच होता है। विचार करते करते वह सिगार जलाता है और धुआं उड़ाता है। धुंको ऊपर चढते हुए वह देखता है और देखते-देखते बोल उठता है- ‘‘मैं कैसा डरपोक हूँ ! खून करना यदि कर्तव्य है, तो फिर संकोच क्यों? चल उठ, और अपना काम कर ।" इस तरह उसकी धूम्रवश विचलित बनी बुध्दि उससे एक निर्दोष आदमीका खून करवाती है। मैं जानता हूँ कि इस दलीलका बहुत असर नहीं पड़ सकता। तम्बाकू पीनेवाले सबके सब पापी नहीं होते। यह कहा जा सकता है कि करोड़ों तम्बाकू पीनेवाले लोग आपना जीवन सामान्यत सरलतासे व्यतीत करते हैं। तो भी जो विचारशील हैं उन्हें उपर्यक्त दृष्टान्त पर मनन करना चाहिए। टॉल्स्टॉयके कहनेका सार यह है कि तम्बाकूके नशेमें मनुष्य छोटे-छोटे पाप किया किया करता है। उसकी विवेकबुध्दि मन्द पड़ जाती है।

हिन्दुस्तानमें हम लोग तम्बाकू केवल पीते ही नहीं, सूंघते भी हैं और जरदेके रूपमें खाते भी हैं। कुछ लोग मानते हैं कि तम्बाकू सूंघनेसे फायदा होता है। वैद्य और हकीमकी सलाहसे वे तम्बाकू सूघते हैं। मेरा मत यह है कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। तन्दुरुस्त मनुष्योंको ऐसी ची़जोंकी आवश्यकता होनी ही नहीं चाहिए। जरदा खानेवालोंको तो कहना ही क्या? तम्बाकू पीना, सूंघना और खाना, इन तीनोंमें तम्बाकू खाना सबसे गन्दी चीज है। इसमें जो गुण माना जाता है, वह केवल भ्रम हैं।

हम लोगोंमें एक कहावत प्रचलित है कि खानेवालाका कोना, सूंघनेवालेका कपडा और पीनेवालेका घर ये तीनों समान हैं। जरदा खानेवाला सावधान हो तो थूकदान रखता है, मगर अधिकांश लोग अपने घरके कोनोंमें और दिवारों पर थूकते शरमाते नहीं हैं। पीनेवाले लोग धुंसे अपना घर भर देते हैं और नसवार सूंघनेवाले अपने कपडे बिगाड़ते हैं। कोई-कोई लोग अपने पास रूमाल रखते हैं, पर वह अपवादरूप है। आरोग्यका पुजारी दृढ़ निश्चय करके सब व्यसनोंकी गुलामीसे छूट जायेगा। बहुतोंको इनमेंसे एक या दो या तीनों व्यसनोंकी गुलामीसे छूट जायेगा। बहुतोंको इनमेंसे एक या दो या तीनों व्यसन लगे होते हैं। इसलिए उन्हें इससे घृणा नहीं होती। मगर शान्त चित्तसे विचार किया जाय, तो तम्बाकू फूंकनेकी क्रियामें या लगभग सारा दिन जरदे या पानके बीड़े वगैरासे गाल भर रखनेमें या नसवारकी डिबिया खोलकर सूंघते रहनेमें कोई शोभा नहीं है। ये तीनों व्यसन गंदे है।

10. ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्यका मूल अर्थ है ब्रह्मकी प्राप्तिके लिए चर्या। संयमके बिना ब्रह्म मिल ही नहीं सकता। संयममे सर्वोपरि स्थान इन्द्रियनिग्रहका है। ब्रह्मचर्यका सामान्य अर्थ स्त्री-संगका त्याग और वीर्य-संग्रहकी साधना समझा जाता है। सब इन्द्रियोंका संयम करनेवालेके लिए वीर्य-संग्रह सहज और स्वाभाविक क्रिया हो जाती है। स्वाभाविक रीतिसे किया हुआ वीर्य-संग्रह ही इच्छित फल देता है। ऐसा ब्रह्मचारी क्रोधादिसे मुक्त होता है। सामान्यत जो लोग ब्रह्मचारी कहे जाते हैं, वे क्रोधी और अहंकारी देखनेमें आते हैं, मानो उन्होंने क्रोध और अभिमान करनेका ठेका ही ले लिया हो।

यह भी देखनेमें आता है कि जो ब्रह्मचर्य-पालनके सामान्य नियामोंकी अवगणना करके वीर्य-संग्रह करनेकी आशा रखते हैं, उन्हें निराश होना पड़ता है; और कुछ तो दीवाने-जैसे बन जाते हैं। दूसरे निस्तेज देखनेमें आते हैं। वे वीर्य-संग्रह नहीं कर सकते और केवल स्त्री-संग न करनेमें सफल हो जाने पर आपने आपको कृतार्थ समझते हैं। स्त्री-संग न करनेसे ही कोई ब्रह्मचारी नहीं बन जाता। जब तक स्त्री-संगमें रस रहता है; तब तक ब्रह्मचर्यकी प्राप्ति नहीं कही जा सकती। जो स्त्री या पुरूष इस रसको जला सकता है, उसीके बारेमें कहाजा सकता है कि उसने अपनी जननेन्द्रिय पर विजय प्राप्त कर ली है। उसकी वीर्यरक्षा इस ब्रह्मचर्यका वाणीमें, विचारमें और आचारमें एक अनोखा प्रभाव देखनेमें आता है।

ऐसा ब्रह्मचर्य स्त्रियोंके साथ पवित्र संबन्ध रखने से या उनके आवश्यक स्पर्शसे भंग नहीं होगा। ऐसे ब्रह्मचारीके लिए स्त्री और पुरुषका भेद मिट-सा जाता है। इस वाक्य का कोई अनर्थ न करे। इसका उपयोग स्वेच्छाचार का पोषण करनेके लिए कभी नहीं होना चाहिये। जिसकी विषयासक्ति जलकर ख़ाक हो गई है, उसके मनमें स्त्री-पुरुषका भेदमिट जाता है, मिट जान चाहिये। उसकी सौंदर्यकी कल्पना भी दूसरा ही रूप ले लेती है। वह बाहरके आकारको देखता ही नहीं। जिसका आचार सुन्दर है, वही स्त्री या पुरुष सुन्दर है। इसलिए सुन्दर स्त्री को देखकर वह विह्बल नहीं बन जायेगा। उसकी जननेन्द्रिय भी दूसरा रूप ले लेगी, अर्थात् वह सदाके लिए विकार-रहित बन जायेगी। ऐसा पुरुष वीर्यहीन होकर नपुंसक नहीं बनेगा, मगर उसके वीर्यका परिवर्तन होनेके कारण वह नपुंसक नहीं बनेगा, मगर उसके वीर्यका परिवर्तन होनके कारण वह नपुंसक-सा लगेगा। सुना है कि नपुंसकके रस जलते नहीं। मुझे पत्र लिखनेवालोंमें से कईने इस बातकी साक्षी दी है कि वे चाहते तो हैं कि उनकी जननेन्द्रिय जाग्रत हो, मगर वह होती नहीं। फिर भी वीर्य-स्खलन हो जाता है। उनमें विषय-रस तो रहता ही है। इसलिए वे अन्दर जला करते हैं। ऐसा पुरुष-रस तो रहता ही है। इसलिए वे अन्दर ही अन्दर जला करते हैं। ऐसा पुरुष क्षीणवीर्य होकर नपुंसक हो गया है, या नपुंसक होनेकी तैयारी कर रहा है। यह दयनीय स्थिति है। परन्तु जो रस मात्रके भस्म हो जानेसे ऊध्वरिता हो गया है, उसका 'नपुंसकत्व' बिलकुल अलग ही किस्मका होता है। वह सबके लिए इष्ट है। ऐसे ब्रह्मचर्य-पालनाका व्रत 1906 में लिया था, अर्थात् मेरा इस दिशामें

छत्तीस वर्षका प्रयत्न है। परन्तु मैं ब्रह्मचर्यकी अपनी व्याख्याको पूर्णतया पहुंच नहीं सका हूँ। तो भी मेरी दृष्टिसे इस दिशामें मेरी अच्छी प्रगति हूई है और ईश्वरकी कृपा होगी तो पूर्ण सफलता भी शायद यह देह छूटनसे पहले मिले जाय। अपने प्रयत्नमें मैं कभी ढीला नहीं पडा। मैं इतना जानता हूँ कि ब्रह्मचर्यकी आवश्यकताके बारेमें मेरे विचार ज्यादा दृढ बने हैं। मेरे कुछ प्रयोग समाजके सामने रखनेकी स्थितिको प्राप्त नहीं हुए हैं। मुझे सन्तोष हो इस हद तक अगर वे सफल हो जायेंगे, तो मैं उन्हें समाजके सामने रखनेकी आशा रखता हूँ; क्योंकि मैं मानता हूँ उनकी सफलतासे पूर्ण ब्रह्मचर्य शायद अपेक्षाकृत सरल बन जायेगा।

इस प्रकरणमें जिस ब्रह्मयर्च पर मैं जोर देना चाहता हूँ, वह वीर्य-रक्षण तक ही सीमित है। पूर्ण ब्रह्मचर्यका अमोघ लाभ उससे नही मिलेगा, तो भी उसकी कीमत कुछ कम नहीं है।

(11-12-’42)

उसके बिना, पूर्ण ब्रह्मचर्य असंभव है। और उसके बिना, पूर्ण आरोग्यकी रक्षा भी अशक्य-सी समझना चाहिये। जिस वीर्यमें दूसरे मनुष्यको पैदा करनेकी शक्ति है, उस वीर्यका व्यर्थ स्खलन होने देना महान अज्ञानकी निशानी है। वीर्यका उपयोग भोगके लिए नहीं, परन्तु केवल प्रजोत्पत्तिके लिए है, यह हम पूरी तरह समझ लें तो विषयासक्ति के लिए जीवनमें कोई स्थान ही न रह जायेगा। स्त्री-पुरुष-संगके खातिर नर-नारी दोनों जिस तरह आज अपना सत्यानाश करते हैं, वह बंद हो जायगा, विवाहका अर्थ ही बदल जायगा और उसका जो स्वरूप आज देखनेमें आता है, उसकी तरफ हमारे मनमें जिरस्कार पैदा होगा। विवाह स्त्री-पुरुषके बीच हार्दिक और आत्मिक ऐक्यकी निशानी होना चाहिये। विवाहित स्त्री-पुरुष यदि प्रजोत्पत्तिके शुभ हेतुके बिना कभी विषय-भोगका विचार तक न करें तो वे पूर्ण ब्रह्मचारी माने जानेके लायक हैं। ऐसा भोग दोनोंकी इच्छा होने पर ही हो सकता है। वह आवेशमें आकर नहीं होगा, कामाग्निकी पृप्तिके लिए तो कभी नहीं। मगर उसे कर्तव्य मानकर किया जाय, तो उसके बाद फिर भोगकी इच्छा भी पैदा नहीं होनी चाहिये। मेरी इस बातको कोई हास्यास्पद न समझे। पाठकोंको याद रखना चाहिये कि छत्तीस वर्षके अनुभवके बाद मैं यह सब लिख रहा हूँ। मैं जानता हूं कि जो कुछ मैं लिख रहा हूँ, वह सामान्य अनुभवसे उलटा है। ज्यों-ज्यों हम सामान्य अनुभवसे आगे बढ़ते हैं, त्यों-त्यों हमारी प्रगति होती है। अनेक अच्छी-बूरी शोधें सामान्य अनुभवके विरुध्द जाकर ही हो सकी है। चकमकसे दियासलाई और दियासलाईसे बिजलीकी शोध इसी एक च़ीजकी आभारी है। जो बात भौतिक वस्तु पर लागू होती है, वहीं आध्यात्मिक पर भी लागू होती है। पूर्वकालमें विवाह-जैसी कोई वस्तु थी ही नहीं। स्त्री-पुरुषके भोग और पशुओंके भोगमें कोई फरक न था। संयम-जैसी कोई वस्तु थी ही नहीं। कई साहसी लोगोंने सामान्य अनुभवसे बाहर जाकर संयम-धर्मकी शोध की। संयम-धर्म कहां तक जा सकता है; इसका प्रयोग करनेका हम सबका अधिकार है। और ऐसा करना हमारा कर्तव्य भी है। इसलिए मेरा कहना यह है कि मनुष्यका कर्तव्य स्त्री-पुरुष संगको मेरी सुझाई हुई उच्च कक्षा तक पहुँचानेका है। यह हंसीमें उड़ा

देने जैसी बात नहीं है। इसके साथ ही मेरी यह भी सूचना है कि यदि मनुष्य-जीवन जैसा गढ़ा जान चाहिये वैसा गढ़ा याय तो वीर्य-संग्रह स्वाभाविक वस्तु हो जानी चाहिये।

नित्य उत्पन्न होनेवाले अपने वीर्यका हमें अपनी मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तिको बढ़ानेमें उपयोग करना चाहिये। जो ऐसा करना सीख लेता है, वह प्रमाणमें बहुत कम ख़ुराकसे अपना शरीर बना सकेगा। अल्पाहारी होते हुए भी वह शारीरिक श्रममें किसीसे कम नहीं रहेगा। मानसिक श्रममें उसे कमसे कम थकान लगेगी। बुढापेके सामान्य चिह्न ऐसे ब्रह्मचारीमें देखनेको नही मिलेंगे। जैसे पका हुआ पत्ता या फल वृक्षकी टहनी परसे सहज ही गिर पड़ता है, वैसे ही समय आने पर मनुष्यका शरीर सारी शक्तियां रखते हुए भी गिर जायेगा। ऐसे मनुष्यका शरीर समय बीतने पर देखनें में भले क्षीण लगे, मगर उसकी बुध्दिका तो क्षय होनेके बदले नित्य विकास ही होना चाहिये। ये चिह्न जिसमें देखनेमें नहीं आते, उसके ब्रह्मचर्यमें उतनी कमी समझनी चाहिये। उसने वीर्य-संग्रहकी कला हस्तगत नहीं ही है। यह सब सच हो- और मेरा दावा है कि सच है- तो आरोग्यकी सच्ची कुंजी वीर्य- संग्रहमें है।

वीर्य-संग्रहके जो थोडे-बहुत नियम मैं जानता हूँ, उन्हें यहां देता हूँ;

(12-12-’42)

1. विकारमात्रकी जड विचारमें है। इसलिए विचारों पर हमें काबू पाना चाहिये। इसका उपाय यह है कि मनको कभी खाली रहने ही न दिया जाय; उसे अच्छे और उपयोगी विचारोंसे पूर्ण रखा जाय। अर्थात् हम जिस काममें लगे हों उसकी चिन्ता न करके यह विचार करें कि कैसे उसमें निपुणता पायी जा सकती है, और उस पर अमल करें। विचार और उसका अमल विकारोंको राकेगा। परन्तु हर समय काम नहीं होता। मनुष्य थकता है, उसका शरीर आराम चाहता है। रातमें जब नींद नही आती तब विकारोंका हमला हो सकता है। ऐसे प्रसंगोंके लिए सर्वोपरि साधन जप है। भगवानका जिस रूपमें अनुभव किया हो, या अनुभव करनेकी धारणा रखी हो, उस रूपको हृदयमें रखकर उस नामका जप किया जाय। जप चल रहा हो तब दूसरा कोई विचार मनमें नहीं होना चाहिये। यह एक आदर्श स्थिति है। वहां तक हम न पहुँच सके और अनेक विचार बिना बुलाये चढ़ाई किया करें, तो उनसे हारना नहीं चाहिये, परन्तु श्रध्दापूर्वक जप जपते रहाना चाहिये; ऐसा करेंगे तो ज़रूर हमें विजय मिलेगी।

2. विचारोंकी तरह वाणी और वाचन भी विकारोंको शान्त करनेवाले होने चाहिये। जिसको बीभत्स विचार नहीं आते, उसके मुंहसे बीभत्स वचन निकल ही नहीं सकते। विषयोंका पोषण करनेवाला क़ाफी साहित्य पड़ा हुआ है। उसकी तऱफ मनको कभी जाने नहीं देना चाहिये। सदग्रंथ या पने कामसे सम्बन्ध रखनेवाले गंथ पढ़ने चाहिये और उनका मनन करना चाहिये। गणितादिका यहां बड़ा स्थान है। यह तो स्पष्ट है कि जो मनुष्य विकारोंका सेवन नहीं करना चाहता, वह विकारोंका पोषण करनेवाले धंधेका त्याग करेगा।

3. जैसे मनको काममें लगाये रखनेकी आवश्यकता है, वैसे ही शरीरको भी काममें लगाये रखना ज़रूरी है। यहां तक कि रात पडने तक मनुष्यको इस कदम मीठी थकान चढ जाय कि बिस्तार पर पडते ही वह तुरन्त निद्रावश हो जाय। ऐसे स्त्री-पुरुषोंकी नींद शान्त और नि:स्वप्न होती है। जितना समय खुलमें मेहनत करनेको मिले, उतना ही अच्छा है। जिन्हें ऐसी मेहनत करनेको न मिले, उन्हें अचूक रूपसे कसरत करनी चाहिये। उत्तमसे उत्तम कसरत है खुली हवामें तेजीसे घूमना। घूमते समय मुंह बन्द होना चाहिये और नाकसे ही श्वास लेना चाहिये। चलते, बैठना या चलना आलस्यकी निशानी है। आलस्यमात्र विकारका पोषक होता है। आसन भी इसमें उपयोगी सिध्द होते हैं। जिसके हाथ, पैर, आंख, कान, नाक, जीभ इत्यादि इन्द्रियां अपने योग्य कार्य योग्य रीतिसे करती है, उसकी जननेन्द्रिय कभी उपद्रव करती ही नहीं। मैं आशा रखता हूँ कि मेरे इस अनुभव-वाक्यको सब कोई मानेंगे।

4. जैसा आहार वैसा ही आकार। जो मनुष्य अत्याहारी है, जो मनुष्य आहारमें कोई विवेक या मर्यादा ही नहीं रखता, वह अपने विकारोंका गुलाम है। जो स्वादको नहीं जीत सकता, वह कभी भी जितेन्द्रिय नहीं हो सकता। इसलिए मनुष्यको युक्ताहारी और अल्पाहारी बनना चाहिये। शरीर आहारके लिए नहा। आहार शरीरके लिए है। शरीर आपने-आपको पहचाननेके लिए हमें मिला है। अपने-आपको पहचानना अर्थात् ईश्वरको पहचानना। इस पहचानको जिसने अपना परम विषय बनाया है, वह विकारवश नहीं होगा।

5. प्रत्येक स्त्री को माता, बहन या पुत्रीकी तरह देखना चाहिये। कोई पुरुष अपनी मां, बहन या पुत्रीको कभी विकारी दृष्टिसे नहीं देखेगा। स्त्री प्रत्येक पुरुषकी अपने पिता, भाई या पुत्रकी तरह देखे।

इन पांच नियमोंमें सब नियमोंका समावेश हो जाता है। अपने दूसरे लेखोंमें मैंने इससे अधिक नियम दिये हैं। मगर उन सबका समावेश इन पांचमें हो जाता है। इन नियामोंका पालन करनेवालेके लिए महान विकारको जीतना बहुत सरल हो जाना चाहिए। जिसे ब्रह्मचर्य-व्रतके पालनकी लगन लगी हैं, वह ऐसा मानकर कि यह तो असंभव बात है या यह मानकर कि इसका पालन करोड़ोंमें कोई बिरले ही कर सकते हैं, अपना प्रयत्न नहीं छोड़ेगा। जो रस ब्रह्मचर्यके पालनमें है, वह दूसरी किसी चीज़में नहीं है। और जो मनुष्य विकारका गुलाम है, उसका शरीर सर्वथा निरोग नहीं रह सकता।

कृत्रिम उपाय: अब कृत्रिम उपायोंके विषयमें कुछ कह दूँ। विषय-भोग करते हुए भी कृत्रिम उपायोंके द्वारा प्रजोत्पत्ति रोकनेकी प्रथा पुरानी है। मगर पूर्वकालमें वह गुप्त रूपमें चलती थी। आधुनिक सभ्यताके इस जमानेमें उसे ऊंचा स्थान मिला है और कृत्रिम अपायोंकी रचना भी व्यवस्थित तरीक़ेसे की गयी है इस प्रथाको परमार्थका जामा पहनाया गया है। इन उपायोंके हिमायती कहते हैं कि भोगेच्छा तो स्वाभाविक वस्तु है, शायद उसे ईश्वरका वरदान भी कहा जा सकता है। उसे निकाल फेंकना अशक्य है। उस पर संयमका अंकुश रखना कठिन है। और अगर संयमें सिवा दूसरा कोई उपाय न ढूंढ़ा जाय, तो असंख्य स्त्रियोंकेलिए प्रजोत्पत्ति

बोझरूप हो जायगी; और भोगसे उत्पन्न होनेवाली प्रजा इतनी बढ जायगी कि मनुष्य-जातिके लिए पूरी ख़ुराक ही नहीं मिल सकेगी।

इन दो आपत्तियोंको रोकनेके लिए कृत्रिम उपायोंकी योजना करना मनुष्यका धर्म हो जाता है। किन्तु मुझ पर इस दलीलका असर नहीं हुआ है, क्योंकि इन उपायोंके द्वारा मनुष्य अनेक दूसरी मुसीबतें मोल ले लेता है। मगर सबसे बड़ा नुकसान तो यह है कि कृत्रिम उपायोंके प्रचारसे संयम-धर्मका लोप हो जानेका भय पैदा होगा। इस रत्नको बेचकर चाहे जैसा तात्कालिक लाभ मिले, तो भी यह सौदा करने योग्य नहीं है। मगर यहां मैं दलीलमें नहीं उतरना चाहता। जिज्ञासुको मेरी सलाह है कि वह 'अनीतिकी राह पर'* नामक मेरी पुस्तक पढ़ें और उसका मनन करें। बादमें जैसा उसका हृदय और बुध्दि कहे वैसा करें। जिन्हे यह पुस्तक पढ़नेकी इच्छा या अवकाश न हो, वे भूलकर भी कृत्रिम उपयोंके ऩजदिक न फटकें। वे विषय-भोगका त्याग करनेका भगीरथ प्रयत्न करें और निर्दोष आनन्दके अनेक क्षेत्रोंमें से थोड़े पसन्द कर लें। ऐसी प्रवृत्तियां ढूंढ़ लें जिनसे सच्चा दंपती-पेम शुध्द मार्ग पर लग जायृ दोनोंकी उन्नति हो और विषय-वासनाके सेवनका अवकाश ही न मिले। दंपती ध्द त्यागका थोडा अभ्यास करनेके बाद इस त्यागके भीतर जो रस भरा पड़ा है, वह उन्हें विषय-भोगकी ओर जाने ही नहीं देगा। कठिनाई आत्म-वंचनासे पैदा होती है। इसमें त्यागका आरम्भ विचार-शुध्दिसे नहीं होता, केवल बाह्यचारको रोकनेके निष्फल प्रयत्नसे होता है। विचारकी दृढताके साथ आचारका संयम शुरू हो, तो सफलता मिले बिना रह ही नहीं सकती। स्त्री-पुरुषकी जोड़ी विषय-सेवनके लिए हरग़िज नहीं बनी है।

**सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली से प्रकाशित। इसका मूल गुजराती संस्करण 'नीति विनाशने मार्गे' नवजीवन ट्रस्टने प्रकाशित किया है*

दूसरा भाग

1. पृथ्वी अर्थात् मिट्टी

ये प्रकरण लिखनेका मेरा हेतु यह बताना है कि नैसर्गिक उपचारोंका जीवनमें क्या महत्त्व है और मैंने उनका उपयोग किस तरहसे किया है। इस विषय पर कुछ तो पिछले प्रकरणोंमे कहा जा चुका है।

(13-12-'42)

यहां वे बातें मुझे कुछ विस्तारसे कहनी हैं। जिन तत्त्वोंसे यह मनुष्यरूपी पुतला बना है, वे ही नैसर्गिक उपचारोंके, साधन हैं। पृथ्वी(मिट्टी), पानी आकाश (अवकाश), तेज(सूर्य) और वायुसे यह शरीर बना है। इन साधनोंका उपयोग यहां क्रमसे बतानेकी मैंने कोशिश की है।

सन् 1901 तक मुझे कोई भी व्याधि होती थी, तो मैं डॉक्टरोंके पास भागता तो नहीं जाता था, मगर उनकी दवाका थोड़ा उपयोग कर लेता था। एक-दो चीजें तो मुझे स्वर्गीय डॉक्टर प्राणजीवन मेहताने बताई थी। मैं एक छोटेसे अस्पतालमें काम करता था। कुछ अनुभव मुझे वहासें मिला और कुछ पढ़नेसे। मुझे खास तक़लीफ कब्जियतकी रहती थी। उसके लिए समयसमय पर मैं फ्रुट सॉल्ट लेता था। उससे कुछ आराम तो मिलता था, मगर कमजोरी मालूम होती थी, सिरमें दर्द होने लगता था और दूसरे भी छोटे-मोटे उपद्रव होते रहते थे। इसलिए डॉक्टर प्राणजीवन मेहताकी बताई हुई दवा लोह (डायलाइज्ड आयरन) और नक्सवोमिका मैं लेने लगा। दवा पर मेरा विश्वास बहुत कम था। इसलिए लाचार हो जाने पर ही मैं दवा लेता था। इससे मुझे संतोष नहीं होता था।

इस अर्सेमें ख़ुराकके मेरे प्रयोग तो चल ही रहे थे। नैसर्गिक उपचारोंमे मुझ क़ाफी विश्वास था। मगर इस बारेमें मुझे किसीकी मदद नहीं थी। इधर-उधरसे जो कुछ मैंने पढ़ लिया था,उसके आधार पर मुख्यत: भोजनमें फेरबदल करके मैं काम चला लेता था। खूब घूम लेता था, इसलिए खाट पर कभी पड़ना नहीं पडा। इस तरहसे मेरी ढीली-ढाली गाड़ी चला करती थी। ऐसे समय सुस्टकी 'िरटर्न टू नेचर' नामकी पुस्तक भाई पोलाकने मुझे पढ़नेको दी। वे खुद उसके उपचारोंको काममें नहीं लेते थे। ख़ुराक जुस्टने जो बताई थी, वही कुछ हद तक वे लेते थे। लेकिन वे मेरी आदतोंको जानते थे, इसलिए उन्होंने वह पुस्तक मुझे दी। उसमें खास जोर मिट्टी पर दिया गया है। मुझे लगा कि उसका उपयोग कर लेना चाहिये। जुस्टने कब्जियतमें मिट्टीको ठंडे पानीमें भीगोकर बगैर कपड़ेके पेडू पर रखनेकी सूचना की है। मगर मैंने तो एक बारीक कपड़ेमें पुलटिसकी तरह मिट्टीको लपेट कर सारी रात अपने पेडू पर रखा। सबेरे उठा तो दस्तको हाजम मालूम हुई। पाखाने जाते ही बंधा हुआ सन्तोषकारी दस्त हुआ। यह कहा जा सकता है कि उस दिनसे लेकर आज तक फुट सॉल्टको मैंने

शायद ही कभी छुआ होगा। आवश्यक मालूम होने पर कभी अरंडीका तेल छोटा पौना चम्मच सबेरे जरूर ले लेता हूँ। मिट्टीकी यह पट्टी तीन इँच चौडी, छह इंच लम्बी और बाजरेकी रोटीसे दूगुनी मोटी या यह कहो कि आधा इंच मोटी होती है। जुस्टका दावा है कि जिसे जहरीले सांपने काटा हो उसे गढा खेदकर उसमें मिट्टीसे ढंककर सुला देनेसे ज़हर उतर जाता है। यह दावा सच्चा साबित हो या न हो, परंतु मैंने स्वयं मिट्टीके जा प्रयोग किये हैं, उन्हें यहां कह दूं। मेरा अनुभव है कि सिरमें दर्द होता हो, तो मिट्टीकी पट्टी सिर पर रखनेसे बहुत फ़ायदा होता है। यह प्रयोग मैंने सेकडों पर किया है। मैं जानता हूं कि सिर-दर्दके अनेक कारण हो सकते हैं, परन्तु सामान्यत: यह कहा जा सकता है कि किसी भी कारणसे सिरमें दर्द क्यों न हो, मिट्टीकी पट्टी सिर पर रखनेसे तात्कालिक लाभ तो होता ही है। सामान्य फोड़े-फुन्सीको भी मिट्टी मिटाती है। मैंने तो बहते हुए फोड़े परभी मिट्टी रखी है। ऐसे फोडे पर मिट्टी रखनेसे पहले मैं स़ाफ कपडेको परमेंगनेटको गुलाबी पानीमें भिगोता हूँ, फोडेको उससे साफ करता हूँ और फिर उस पर मिट्टीकी पुलटिस रखता हूँ। इससे अधिकांश फोड़े मिट ही जाते हैं। जिन पर मैंने यह प्रयोग किया है, उनमें से एक भी केस निष्फल रहा हो ऐसा मुझे याद नहीं आता। बर्र वगैराके डंक पर मिट्टी तुरन्त फायदा करती है। बिच्छुका उपद्रव आये दिनकी बात हो गयी है। बिच्छूके जितने इलाजोंका पता लगा है, वे सब इलाज सेवाग्राममें आजमा कर देखे गये हैं। मगर उनमें से किसीको भी अचूक नहीं कहा जा सकता। मिट्टी उनमें किसीसे कम साबित नहीं हुई।

सख्त बुखारमें मिट्टीका उपयोग पेडू पर रखनेके लिए और सिरमें दर्द हो,तो सिर पर रखनेके लिए मैंने किया हैं। मैं यह तो नहीं कह सकता कि इससे हमेशा बुखार उतरा ही है, मगर रोगीको इससे शांति जरुर मिली है।

(14-12-'42)

टाइफाइडमें मैंने मिट्टीका खूब प्रयोग किया है। यह बुखार तो अपनी मुद्दत लेकर ही जाता था, मगर मिट्टीसे रोगीको हमेशा शांति मिलती थी। सब रोगी ख़ुद मिट्टी मांगते थे। सेवाग्राम आश्रममें टाइफाईड के दसेक केस हो चुके हैं। पर उनमें से एक भी केस नहीं बिगडा। सेवाग्राममें अब टाईफाइडसे लोग डरते नहीं हैं। मैं कह सकता हूँ कि एक भी केसमें मैंने दवाका उपयोग नहीं किया। मिट्टीके सिवा दूसरे नैसर्गिक उपचारोंको उपयोग मैंने ज़रूर किया है, मगर उनकी चर्चा उनके स्थान पर करूंगा।

मिट्टीका उपयोग सेवाग्राममें एन्टीप्लोजिस्टिनकी जगह पर छूटसे हुआ है। उसमें थोडा सरसोंका तेल और नमक मिलाया जाता है। इस मिट्टीको अच्छी तरह गरम करना पड़ता है। इससे वह बिलकुल निर्दोष बन जाती है।

मिट्टी कैसी होनी चाहिये, यह कहना अभी ब़ाकी है। मेरा पहला परिचय तो अच्छी लाल मिट्टीसे हुआ था। पाना मिलाने पर उसमें से सुगंध निकलती है। ऐसी मिट्टी आसानीसे नहीं मिलती। बम्बई जैसे शहरमें तो किसी भी तऱहकी मिट्टी पाना मेरे लिए कठिन हो गया था। मिट्टी न मो बहुत चीकनी होनी चाहिये और न बिलकुल

रेतीली। खादवाली तो हरग़िज न होनी चाहिये। वह रेशमकी तरह मुलायम होनी चाहिये और उसमें कंकरी बिलकुल न होनी चाहिये। इस लिए उसे बारीक छलनीसे छान लेना अच्छा है। बिलकुल स़ाफ न लगे तो उसे सेंक लेना चाहिये। मिट्टी बिलकुल सूखी होनी चाहिये। गीली हो तो उसे धूपमें या अंगीठी पर सूखा लेना चाहिये। साफ भाग पर इस्तेमाल की हुई मिट्टी सूखाकर बार-बार इस्तेमाल की जा सकती है। इस तरह इस्तेमाल करनेसे मिट्टीका कोई गुण कम होता हो ऐसा मैं नहीं जानता। मैंने इस तरह मिट्टीका कोई गुण कम होता हो ऐसा मैं नहीं जानता। मैंने इस तरह मिट्टीका इस्तेमाल किया है और मेरे अनुभवमें यह नहीं आया कि उसका कोई गुण कम हुआ है। मिट्टीका उपयोग करनेवालोंसे मैंने सुना है कि जमुनाके किनारे जो पीली मिट्टी मिलती है वह बहुत गुणकारी होती है।

मिट्टी खाना: क्युनेने लिखा है कि स़ाफ बारीक समुद्री रेती दस्त लानेके लिए उपयोगमें ली जाती है। मिट्टी किस तरह काम करती है, इसके बारेमें उन्होंने बताया है कि मिट्टी पचती नहीं, उसे कचरे (refuse) तरह पेटसे बाहर निकलना ही होता है। और अपने साथ वह मलको भी बाहर निकलती है। लेकिन इसका मैंने तो कभी अनुभव नहीं किया है। इसलिए जो लोग यह प्रयोग करना चाहें, वे सोच-समझ कर ही करें। एक-दो बार आजमा कर देखनेमें कोई नुकसान होनेकी संभावना नहीं है।

2. पानी

पानीका उपचार एक प्रसिध्द और पुरानी च़ीज है। उसके बारेमें अनेक पुस्तके लिखी गयी हैं। क्युनेने पानीका उत्तम उपयोग ढूंढ़ निकाला है। क्युनेकी पुस्तक हिन्दुस्तानमें बहुत प्रसिध्द हुई है और उसका तर्जुमा भी हमारी भाषाओंमे हुआ है। उसके सबसे अधिक अनुयायी आन्ध्र देशमें मिलते हैं। क्युनेने ख़ुराकके बारेमें भी क़ाफी लिखा है। मगर यहां तो मेरा विचार केवल पानीके उपचारोंके बारेमें ही लिखनेका है।

क्युनेने उपचारोंमें मध्यबिन्दु कटि-स्थान और घर्षण-स्नान हैं उनके लिए उसने खास बरतनकी भी योजना की है। मगर उसकी खास आवश्यकता नहीं है। मनुष्यके कदके अनुसार तीससे छत्तीस इंच गहारा टब ठीक काम देता है। अनुभवसे ज्यादा बडे टबकी आवश्यकता मालूम हो, तो ज़्यादा बड़ा ले सकते हैं। उसमें ठंडा पानी भरना चाहिये। गर्मीकी ऋतुमें पानीको ठंडा रखनेकी खास आवश्यकता है। पानीको तुरन्त ठंडा करनेके लिए यादे मिल सके तो थोडी बरफ डाल सकते हैं। समय हो तो मिट्टीके घड़ेमें ठंडा किया हुआ पानी अच्छी तरह काम दे सकता है। टबमें पानीके ऊपर एक कपड़ा ढंककर जल्दी-जल्दी पंखा करनेसे भी पानीको तुरन्त ठंडा किया जा सकता है।

टबको दीवारके साथ लगाकर रखना चाहिये और उसमें पीठको सहारा देनेके लिए एक लम्बा लकड़ीका तख्ता रखना चाहिये, ताकि उसका सहारा लेकर रोगी आरामसे बैठ सके। रोगीको अपने पैर पानीसे बाहर रखकर टबमें बैठना चाहिये। रोगीको आरामसे टबमें बैठाकर पेडू पर नरम तौलियेसे धीरे-धीरे घर्षण करना चाहिये। पांच मिनटसे लेकर तीस मिनट तक टबमें बैठ सकते हैं। स्नानके बाद गीले हिस्सेको सूखाकर रोगीको बिस्तरमें सुला देना चाहिये। यह स्नान बहुत सक्षत बुखारको भी उतार देता है। इस तरह स्नान लेनेमें नुकसान तो है ही नहीं, जब कि लाभ प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। स्नान भूखे पेट ही लेना चाहिये। इससे कब्जियतको भी फायदा होता है। और अजीर्ण भी मिटता है। स्नान लेनेवालेके शरीरमें उससे स्फूर्ति आती है। कब्जियतवालोंको स्नानके बाद आधा घंटा टहलनेकी सलाह क्युनेने दी है। इस स्नानका मैंने बहुत उपयोग किया है। मैं यह नहीं कह सकता कि वह हमेशा ही सफल हुआ है, मगर इतना कह सकता हूँ कि सौमें पचाहत्तर बार वह सफल हुआ है। खूब बुखार च़ा हुआ हो, तब यदि रोगीकी स्थिति ऐसी हो कि उसे टबमें बैठाया जा सके, तो उससे दो-तीन डिग्री तक बुखार अवश्य उतर जायगा और सन्निपातका भय मिट जायगा।

इस स्नानके बारेमें क्युनेकी दलील यह है : बुखारके बाहरी चिह्न भले कुछ भी हों, मगर उसका आन्तरिक कारण तो एक ही होता है। आंतोंमें इकट्ठे हुए मलके ज़हरसे या अन्य कारणोंसे बुखार उत्पन्न होता है।

(15-12-’42)

यह आंतोंका बुखार – उन्दरकी गर्मी – अनेक रूप लेकरबाहर प्रकट होता है। यह आंतरिक बुखार कटि-स्नानसे अवश्य लतरता है और उससे बाहरके अनेक उपद्रव शान्त होते हैं। मैं नहीं जानता कि इस दलीलमें कितना तथ्य है। यह तो अनुभवी डॉक्टर ही बता सकते हैं। डॉक्टरोंने यद्यपि नैसर्गिक उपचारोमें से कई एकको अपना लिया है, तो भी यह कहा जा सकता है कि वे इन पउचारोंके विषयमें उदासीन रहे हैं। इसमें मैं दोनों पक्षोंका दोष पाता हूँ। डॉक्टरोंने डॉक्टरीके शिक्षण - केन्द्राWमें सीखी हुई बातों पर ही ध्यान देनेकी आदत डाल ली है, इसलिए बाहरकी चीजोंके प्रति वे लोग तिरस्कार नहीं तो उदासीनता अवश्य बताते हैं। नैसर्गिक उपचार करनेवाले लोग डॉक्टरोंके प्रति तिरस्कार भाव रखते हैं। उनके पास शास्त्राrय ज्ञान बहुत कम होता है, तो भी वे दावे बहुत बड़े-बड़े करते हैं। संघशक्तिका उन उपचारकोंमें अभाव रहता है, क्योंकि सब अपनेअपने ज्ञानकी पूंजीसे ही संतोष मानते हैं। इसलिए कोई दो उपचारक साथ मिलकर काम नहीं कर सकते। किसीके प्रयोग गहरे नहीं उतरते। बहुतोंमें नम्रताका भी अभाव होता है। (क्या नम्रता सीखी भी जा सकती है?) यह सब कहकर मैं नैसर्गिक उपचारकोंको कोसना नहीं चाहता, परन्तु वस्तुस्थिति बता रहा हूँ। जब तक उन लोगोंमे कोई अत्यंत तेजस्वी मनुष्य पैदा नहीं होता, तब तक यह स्थिति बदलनेकी कम सम्भावना है। इस स्थितिको बदलनेकी जिम्मेदारी नैसर्गिक उपचारकों पर है। डॉक्टरोंके पास उनका अपना शास्त्र है, अपनी प्रतिष्ठा है, अपना संघ है और अपने विद्यालय भी हैं। अमुक हद तक उन्हें अपने काममें सफलता भी मिलती है। उनसे यह आशा नहीं रखनी चाहिये कि एक अपरिचित ज़ीजको, जो डॉक्टरीकी मार्फत नहीं आई है, वे एकाएक ग्रहण कर लेंगे।

अब मैं घर्षण-स्नान पर आता हूँ। जननेन्द्रिय बहुत ऩाजुक इन्द्रिय है। उसकी ऊपरकी मचड़ीके सिरेमें कुछ अद्भुत चीज है। उसका वर्णन करना मुझे नहीं आता है। इस ज्ञानका लाभ लेकर क्युनेने कहा है कि इस इन्द्रियके सिरे पर (पुरुष हो तो सुपारी पर चमड़ी चढ़ाकर) नरम रूमालको पानीमें भिगोकर घिसते जाना चाहिये और पानी डालते जाना चाहिये। उपचारकी पध्दति यह बताई गई है : पानीके टबमें एक स्टूल रखा जाय। स्टूलकी बैठक पानीकी सतहसे थोड़ी ऊंची होनी चाहिये। इस स्टूल पर पांव टबसे बाहर रखकर बैठ जाना चाहिये और इन्द्रियके सिरे पर घर्षण करना चाहिये। उसे तनिक भी तकलीफ नहीं पहुंचनी चाहिये। यह क्रिया बीमार को अच्छी लगनी चाहिए। यह स्नान लेनेवालेको इस घर्षणसे बहुत शान्ति मिलती है। उसका रोग भले कुछ भी हो, उस समय तो वह शान्त हो ही जाता है। क्युनेने इस स्नानको कटि-स्नानसे भी ऊंचा स्थान दिया है। मुझे जितना अनुभव कटिस्नानका है, उतना घर्षण स्नानका नहीं है। इसमें मुख्य दोष तो मैं अपना ही मानता हूँ। मैंने घर्षण-स्नानका प्रयोग करनेमें धीरजसे इसका प्रयोग नहीं किया। इसलिए इस स्नानके परिणामके बारेंमे मैं निजी अनुभवसे कुछ नहीं लिख सकता। सबको इसे स्वयं आंजमा कर देख लेना चाहिये। टब वगैरा न मिल सके, तो लोटेमें पानी भरकर भी घर्षण-स्नान किया जा सकता है। उससे शांति तो अवश्य ही मिलेगी। लोग इस इंन्द्रियकी स़फाई पर बहुत कम ध्यान देते हैं। घर्षण-स्नानसे वह आसानीसे स़ाफ हो जाती है। अगर

ध्यान न रखा जाय, तो सुपारीको ढंकनेवाली चमडीमें मैल भर जाता है इस मैलको साफ करनेकी पूरी आवश्यकता है। जननेन्द्रियका उपयोग घर्षण-स्नानके लिए करने और उसे साफसुथरा रखनेसे ब्रह्मचर्य-पालनमें मदद मिलता है। इससे आसपासके तन्तु मज़बूत और शान्त बनते हैं और इस इन्द्रियके द्वारा व्यर्थ वीर्य-स्खलन न होने देनेकी सावधानी बढ़ती है, क्योंकि इस तरह स्राव होने देनेमें जो गंदगी रहती है, उसके लिए हमारे मनमें नफ़रत पैदा होती है, और होनी भी चाहिये।

इन दोनों खास स्नानोंको हम क्युने-स्नान कह सकते हैं। तीसरा ऐसा ही असर पैदा करनेवाला चद्दर-स्नान है। जिसे बुखार आता हो या किसी तरह भी नींद न आती हो, उसके लिए यह स्नान उपयोगी है।

खाट पर दो-तीन गरम कम्बल बिछाने चाहिये। ये क़ाफी चौडे होने चाहिये। इनके ऊपर एक मोटी सूती चद्दर – मोटी खादीका खेस – बिछाना चाहिये। इस चद्दरको ठंडे पानीमें भिगोकर और खूब निचोड़कर कम्बलों पर बिछाना चाहिये। इसके ऊपर रोगीको कपड़े उतारकर चित्त सुला देना चाहिये। उसका सिर कम्बलोंके बाहर तकिये पर रखना चाहिये और सिर पर गीला निचोड़ा हुआ तौलिया रखना चाहिये। रोगीको सुलाकर तुरन्त कम्बलके किनारे और चद्दर चारों तऱफसे शरीर पर लपेट देने चाहिये। हाथ कम्बलोंके अन्दर होने चाहिये और पैर भी अच्छी तरह चद्दर और कम्बलोंसे ढंके रहने चाहिये, ताकि बाहरका पवन भीतर न जा सके। इस स्थितिमें रोगीको एक-दो मिनटमें ही गरमी लगनी चाहिये। सर्दीका क्षणिक आभासमात्र सुलाते समय होगा, बादमें तो रोगीको अच्छा ही लगना चाहिये। बुखारने अगर घर न कर लिया हो, तो पांचेक मिनटमें गर्मी लगकर पसीना छूटने लगेगा। परन्तु सख्त बीमारीमें मैंने आधे घंटे तक रोगीको इस तरह गीली चद्दरमें रखा है और अन्तमें उसे पसीना आया है। कभी-कभी पसीना नहीं छूटता, मगर रोगी सो जाता है। सो जाये तो रोगीको जगाना नहीं चाहिये। नींदका आना इस बातका सूचक है कि उसे चद्दर-स्नानसे आराम मिला है। चद्दरमें रखनेके बाद रोगीको बुखार एक-दो डिग्री तो नीचे उतरता ही है। मेरे (दूसरे) लड़केको डबल निमोनिया हो गया था और सन्निपात भी। ऐसी हालतमें मैंने उसे चद्दर-स्नान कराया। वह पसीनेसे तरबतर हो गया और तीन-चार दिन इस तरह करनेके बाद उसका बुखार उतर गया। उसका बुखार आखिर टाईफाइड सिध्द हुआ और 42 दिनके बाद ही पूरी तरह उतरा। चद्दर-स्नान जब तक बुखार 160 तक जाता था तभी तक दिया गया। सात दिनके बाद इतना सख्त बुखार आना बन्द हो गया, निमोनिया मिट गया और टाइफाइडके रूपमें उसे 103 तक बुखार रहने लगा। हो सकता है कि बुखारके अंश (डिग्री) के बारेमें मेरी स्मरण-शक्ति मुझे धोखा देती हो। यह उपचार मैंने डॉक्टर मित्रोंका विरोध करके किया था। दवा तो बिलकुल नहीं दी। आज मेरे चारों लड़कोंमे वह लड़का सबसे अधिक स्वस्थ है और सबसे अधिक श्रम करनेकी शक्ति रखता है।

शरीरमें घमोरी निकली हुई हो, पित्ती (prickly heat) निकली हुई हो, आमवात (urticaria) निकला हो, बहुत खुजली आती हो, खसरा या चेचक निकली हो, तो भी यह चद्दर-स्नान काम देता है।

(16-12-’42)

मैंने इन सब रोगोंमें चद्दर-स्नानका उपयोग छूटसे किया है। चेचक या खसरेमें मैं पानीमें गुलाबी रंग आ जाय इतना परमेंगनेट डालता था। चद्दरका उपयोग हो जाने पर उसे उबलते पानीमें डाल देना चाहिये और जब पानी कुनकुना हो जाय, तब उसे अच्छी तरह धोकर सुखा लेना चाहिये।

रक्तकी गति मन्द पड़ गयी हो, या पांव टूटते हों, तब बऱफ घिसनेसे बहुत फायदा होते मैंने देखा है। बरफके उपचारका असर गर्मीकी ऋतुमें अधिक अच्छा होता है। सर्दीकी ऋतुमें कमज़ोर मनुष्य पर बऱफका उपचार करनेमें खतरा है।

अब गरम पानीके उपचारोंके बारेमें विचार करें। गरम पानीका समझपूर्वक उपयोग करनेसे अनेक रोग शान्त हो जाते हैं। जो काम प्रसिध्द दवा आयोडीन करती है, वही काम क़ाफी हद तक गरम पानी कर देता है। सूजनवाले भाग पर हम आयोडीन लगाते हैं। उस पर गरम पानीकी पट्टी रखनेसे आराम होना संभव है। कानके दर्दमें हम आयोडिनकी बुंदे डालते हैं; उरामें भी गरम पानीकी पिचकारी लगानेसे दर्द शांत होनेकी संभावना है। आयोडीनके उपयोगमें कुछ खतरा रहता है, जब कि गरम पानी के उपचारमें कुछ भी नहीं। जिस तरह आयोडीन जंतुनाशक (disinfectant) है, उसी तरह उबलता गरम पानी भी जन्तुनाशक है। इसका यह अर्थ नहीं है कि आयोडीन उपयोगी वस्तु नहीं है। उसकी उपयोगिताके बारेमें मेरे मनमें तनिक भी शंका नहीं है। मगर गरीबके घरमें आयोडीन नहीं होता। वह महंगी च़ीज है। वह हरएक आदमीके हाथमें नहीं रखा जा सकता। मगर पानी तो हर जगह होता है। इसलिए हम दवाके तौर पर उसके उपयोगकी अवगणना करते है। ऐसी अवगणनासे हमें बचना चाहिये। ऐसे घरेलू उपचारोंको सीखकर और उन्हें अपनाकर हम अनेक भयोंसे बच जाते है।

बिच्छुके काटेको जब दूसरी किसी च़िजसे फ़ायदा नहीं होता, तब डंकवाले भागको गरम पानीमें रखनेसे कुछ आराम तो मिलता ही है।

एकाएक सर्दी लगे, कंपकंपी चढने लगे, तब रोगीको भाप देनेसे, या उसे अच्छी तरह कम्बल ओढ़ाकर उसके चारों ओर गरम पानीकी बोतलें रखनेसे उसकी कंपकंपी मिटायी जा सकती है। सबके पास रबड़की गरम पानीकी थैली नहीं होती। कांचकी म़जबूत बोतलमें म़जबूत कॉर्क लगाकर उसे गरम पानीकी थैलीके तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है। धातुकी या दूसरी बोतल बहुत गरम हो, तो उसे कपड़ेमें लपेटकर इस्तेमाल करना चाहिये।

भापके रूपमें पानी बहुत काम देता है। पसीना न आता हो तो भापके द्वारा लाया जा सकता है। गठियासे जिसका शरीर निकम्मा बन गया हो, या जिनका व़जन बहुत बढ गया हो, उनके लिए भाप बहुत उपयोगी वस्तु है।

भाप लेनेका पुराना और आसानसे आसान तरीका यह है : सनकी या सुतलीकी खाट इस्तेमाल करना ज़्यादा अच्छा है, मगर निवारकी खाट भी चल सकती है। खाट पर एक खेस या कम्बल बिछाकर रोगीको उस पर सुला देना चाहिये। उबलते पानीके दो पतीले या हंडे खाटके नीचे रखकर रोगीको इस तरह ढंक देना चाहिये। कि कम्बल खाट परसे लटक कर चारों तरफ जमीनको छू ले, ताकि खाटके नीचे बाहरकी हवा जा ही न सके। इस तरहसे लपेटनेके बाद पानीके पतीलों या हंडों परसे ढंकना उतार देना चाहिये। इससे रोगीको भाप मिलने लगेगी। अच्छी तरह भाप न मिले, तो पानीको बदलना होगा। दूसरे हंडेमें पानी उबलता हो, तो उसे खाटके नीचे रख देना चाहिये।

(17-12-’42)

साधारणतया हम लोगोंमें यह रिवाज है कि हम खाटके नीचे अंगारे रखते हैं और उसके ऊपर उबलते हुए पानीका बरतन। हस तरह पानीक गर्मी कुछ ज्यादा तो मिल सकती है, मगर इसमें दुर्घटनाका डर रहता है। एक चिनगारी भी उड़े और कम्बल या किसी दूसरी चीजको अगर लाग लग जाय, तो रोगीकी जान खतरेमें पड़ सकती है। इसलिए तुरन्त ही गर्मी पानेका लोभ छोडकर जो तऱाका मैंने बताया है उसीका उपयोग करना ज़्यादा अच्छा है।

कुछ लोग भापके पानीमें वनस्पतियां डालते हैं, जैसे कि नीमके पत्ते। मुझे स्वयं इसकी उपयोगिताका अनुभव नहीं है, मगर भापका उपयोग लो प्रत्यक्ष ही है। यह हुआ पसीना लानेका तरीका।

पांव ठंडे हो गये हों या टूटते हों, तो एक गहरे बरतनमें, जिसमें कि घुटने तक पांव पहुंच सकें, सहन होने लायक गरम पानी भरना चाहिये और उसमें राईकी भुक्की डालकर कुछ मिनट तक पांव रखने चाहिये। इससे ठंडे पांव गरम हो जाते हैं, बेचैनी और पांवोंका टूटना बन्द हो जाता है, खून नीचे उतरने लगता है और रोगीको आराम मालूम होता है। बलगम हो या गला दुखता हो, तो केटलीको एक स्वतंत्र नली लगा कर उसके द्वारा आरामसे भाप ली जा सकती है। यह नली लकड़ीकी होनी चाहिये। इस नली पर रबड़की नही लगा लेनेसे काम और भी आसान हो जाता है।

3. आकाश

आकाशका ज्ञानपूर्वक उपयोग हम कमसे कम करते हैं। उसका ज्ञान भी हमें कमसे कम होता है। आकाशको अवकाश काह जा सकता है। दिनमें अगर बादल न हों, तो ऊपरकी ओर देखने पर एक अत्यन्त स्वच्छ, सुंदर, आसमानी रंगका शामियाना नजर आता है। उस शामियानेको हम आकाश कहते हैं। इसका दूसरा नाम आसमान है न? इस शामियानेका कोई ओर-छोर देखनेमें नहीं आता। वह जितना हमसे दूर है, उतना ही हमारे ऩजदीक भी है। हमारे चारों ओर आकाश न हो, तो हमारा खातमा ही हो जाय। जहां कुछ भी नहीं है वहां आकाश है। इसलिए यह नहीं समझना चाहये कि दूरदूर जो आसमानी रंग देखनेमें आता है, ऱिर्फ वही आकाश है। आकाश तोहमारे पाससे ही शुरू हो जाता है। इतना ही नहीं, वह हमारे भीतर भी है। खालीपन अथवा शून्य (vacuum)को हम आकाश कह सकते हैं। मगर सच है कि हम हवाको देख नहीं सकते। मगर हवाके रहनेका ठिकाना कहां है? हवा आकाशमें ही विहार करती है न? इसलिए आकाशसे हम अलग हो ही नहीं सकते। हवाको तो बहुत हद तक पम्प द्वारा खींचा भी जा सकता है, मगर आकाशको कौन खींच सकता है? यह सही है कि हम आकाशको भर देते हैं। मगर क्योंकि आकाश अनन्त है, इसलिए कितने भी शरीर क्यों न हों, सब उसमें समा जाते है।

इस आकाशकी मदद हमें आरोग्यकी रक्षाके लिए और उसे खो चुके हों तो फिरसे प्राप्त करनेके लिए लेनी हैख्ख् जीवनके लिए हवाकी सबसे अधिक आवश्यकता है, इसलिए वह सर्व-व्यापक है। मगर हवा दूसरी चीजोंके ग़ुकाबलेमें व्यापक तो है, पर अनन्त नहीं है। भौतिकशास्त्र हमें सिखाता है पृथ्वीसे अमुक मील ऊपर चले जायें, तो वहां हवा नहीं मिलती। ऐसा कहा जाता है कि इस पृथ्वीके प्राणियों जैसे प्राणी हवाके आवरणसे बाहर रह ही नहीं सकते। यह बात सच हो या न हो, हमें इतना ही समझना है कि आकाश जैसे यहां है, वैसे ही वह हवाके आवरणसे बाहर भी है। इसलिए सर्व-व्यापक तो आकाश ही है, फिर भले वैज्ञानिक लोग सिध्द किया करें कि उस आवरणके ऊपर 'ईश्वर'नामका पदार्थ या कुछ और है। वह पदार्थ भी जिसके भीतर रहता है वह आकाश ही है। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि अगर हम ईश्वरका भेद ज़ान सकें,तो आकाशका भेद भी जान सकेंगे।

ऐसे महान तत्त्वका अभ्यास और उपयोग जितना हम करेंगे, उतना ही अधिक आरोग्यका उपभोग कर सकेंगे।

पहला पाठ तो यह है कि इस सुदूर और अदूर तत्त्वके और हमारे बीचमें कोई आवरण नहीं आने देना चाहिये। अर्थात् यदि घरबारके बिना, अथवा कपडोंके बिना हम इस अनन्तके साथ सम्बध जोड़ सकें तो हमारा शरीर, बुध्दि और आत्मा पूरी तरह आरोग्यका अनुभव कर सकेंगे। इस आदर्श तक हम भले ही न पहुंच सकें, या करोड़ोमें एक ही पहुंच सके, तो भी इस आदर्शको जानना, इसे समझना और इसके प्रति आदर-भाव रखना आवश्यक है। और यदि यह हमारा आदर्श हो, तो जिस हद तक हम इसे प्राप्त कर सकेंगे, उसी हद तक हम

सुख, शान्ति और सन्तोषका अनुभव कर सकेंगे। इस आदर्शको मैं आखिरी हद तक पेश कर सकूं, तो मुझे यह कहना पडेगा कि हमें शरीरका अन्तराय भी नहीं चाहिये, अर्थात् शरीर रहे या जाये, इस बारेमें हमें तटस्थ रहना चाहिये। मनको हम इस तरहका शिक्षण दे सकें, तो शरीरको विषय-भोगका साधन तो कभी नहीं बनायेंगे। तब अपनी शक्ति और अपने ज्ञानके अनुसार हम अपने शरीरका सदुपयोग सेवाके लिए, ईश्वरको पहचाननेके लिए, उसके जगतको जाननेके लिए और उसके साथ ऐक्य साधनेके लिए करेंगे।

इस विचारसरणी के अनुसार घरबार, वस्त्रदिके उपयोंगमें हम काफी अवकाश रख सकते हैं। कई घरोमें इतना साज-समान देखनेमें आता है कि मेरे जैसे गरीब आदमीका तो उसमें दम ही घुटने लगता है। उन सब च़ीजोंका जीवनमें क्या उपयोग है, वहां तो मैं खो ही जाता हूं। यहांकी कुर्सियां, मेजें, अलमारियां और शीशे मुझे खानेको दौड़ते हैं। यहांके क़ीमती कालीन केवल धूल इकट्ठी करते हैं और सूक्ष्म जन्तुओंका घर बने हुए हैं। एक बार एक कालीनको झाड़नेके लिए निकाला गया था। वह एक आदमीका काम नहीं था। छह-सात आदमी उसमें लगे। कमसे कम दस रतल धूल तो उसमें से निकली ही होगी। जब उसे वापस उसकी जगह रखा गया, तो उसका स्पर्श नया ही मालूम हुआ। ऐसे कालीन ऱोज थ़ेडे ही निकाले जा सकते हैं? अगर निकाले जायं तो उनकी उमर कम हो जायगी और मेहनत बढ़ेगी। यह तो मैं अपना त़ाजा अनुभव लिख गया। मगर आकाशके साथ मेल साधनेके खातिर मैंने अपने जीवनमें अनेक झंझटें कम कर डाली हैं। घरकी सादगी, वस्त्रकी सादगी ओर रहन-सहनकी सादगीको बढाकर,एक शब्दमें कहूँ, और हमारे विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली भाषामें कहूँ, तो मैंने अपने जीवनमें उत्तरात्तर खालीपनको बढ़ाकर आकाशके साथ सीधा सम्बन्ध बढ़ाया है। यह भी कहा जा सकता है कि जैसे-जैसे यह सम्बन्ध बढ़ता गया, वैसे-वैसे मेरा आरोग्य भी बढ़ता गया, मेरी शान्ति बढती गई,सन्तोष बढता गया और धनेच्छा बिलकुल मन्द पड़ती गई। जिसने आकाशके साथ सम्बन्ध जोड़ा है, उसके पास कुछ नहीं है, और सब-कुछ है। अन्तमें तो मनुष्य उतनेका ही मालिक है न, जितनेका वह प्रतिदिन उपयोगसे वह आगे बढ़ता है। सब कोई ऐसा करें तो इस आकाश-व्यापी जगतमें सबके लिए स्थान रहे और किसीको तंगीका अनुभव ही न हो।

इसलिए मनुष्यके सोनेका स्थान आकाशके नीचे होना चाहिये। ओस और सर्दीसे बचनेके लिए हम काफी ओढ़नेको रख सकते हैं। वर्षा ऋतुमें एक छातेकी सी छत भले ही रहे, मगर बाकी हर समय उसकी छत अगणित तारागणोंसे जड़ा हुआ आकाश ही होगा। जब आंख खुलेगी, वह प्रतिक्षण नया-नया दृश्य देखेगा। इस दृश्यसे वह कभी भी ऊबेगा नहीं।

(18-12-’42)

इससे उसकी आंखे चौंधियाएंगी नहीं बल्कि वे शीतलताका अनुभव करेगी। तारागणोंका यह भव्य संघ उसे घूमता ही दिखाई देगा। तो मनुष्य उनके साथ सम्पर्क साधकर सोयेगा, उन्हें अपने हृदयका साक्षी बनायेगा, वह अपवित्र विचारोंको कभी अपने हृदयमें स्थान नहीं देगा और शान्त निद्राका उपभोग करेगा।

परंतु जिस तरह हमारे आसपास आकाश है, उसी तरह हमारे भीतर भी वह है। चमड़ीके एक-एक छिद्रमें और दो छिदोंके बीचकी जगहमें भी आकाश है। इस आकाशको - अवकाशको - भरनेका हम जरा भी प्रयत्न न करें। इसलिए आहार जितना आवश्यक हो उतना ही यदि हम लें तो शरीरको अवकाश रहेगा। हमें इस बातका हमेशा भान नहीं रहता कि हम कब अधिक या अयोग्य आहार कर लेते हैं। इसलिए अगर हम हफ्तेमें एक दिन या पखवारेमें एक दिन या सुविधासे उपवास करें, तो शरीरका सन्तुलन क़ायम रख सकते हैं। जो पूरे दिनका उपवास न कर सकें, वे एक या एकसे अधिक वक्ताका खाना छोडनेसे भी लाभ उठायेंगे।

4. तेज

जैसे आकाश, हवा, पानी आदि तत्त्वोंके बिना मनुष्यका निर्वाह नहीं हो सकता, वैसे ही तेज अर्थात् प्रकाशके बिना भी नहीं हो सकता। प्रकाश-मात्र सूर्यसे मिलता है। सूर्य नहीं हो तो न तो हमें गर्मी मिल सके, न प्रकाश। इस प्रकाशका हम पूरा उपयोग नहीं करते, इसलिए पूर्ण आरोग्यका भी हम अनुभव नहीं करते। जैसे हम पानीका स्नान करके साफ होते हैं, वैसे ही सूर्य-स्नान करके भी हम साफ और तन्दुरुस्त हो सकते हैं। दुर्बल मनुष्य या जिसका ख़ून सूख गया हो, वह यदि प्रातःकालके सूर्यकी किरणे नंगे शरीर पर ले, तो उसके चेहरेका फीकापन और दुर्बलता दूर हो जायगी और पाचन-क्रिया यदि मंदहो तो वह जाग्रत हो जायगी। सवेरे जब धूप ज्यादा न चढी हो, उस वक्त यह स्नान करना चाहिये। जिसे नंगे शरीर लेटने या बैठनेमें सर्दी लगे, वह आवश्यक कपड़े लेटे या बैठे और जैसे-जैसे शरीर सहन करता जाय वैसे-वैसे कपड़े हटाता जाय। हम नंगे बदन धूपमें टहल भी सकते हैं। कोई देख न सके ऐसी जगह ढूढकर यह क्रिया की जा सकती है। अगर ऐसी सहूलियत पैदा करनेके लिए दूर जाना पडे और इतना समय न हो तो बारीक लंगोटीसे गुह्य भागोंको ढंककर सूर्य-स्नान लिया जा सकता है।

इस प्रकार सूर्य-स्नान लेनेसे बहुतसे लोगोंको लाभ हुआ है। क्षय रोगमें इसका खूब उपयोग होता है। सूर्य-स्नान अब केवल नैसर्गिक उपचारकोंका विषय नहीं रहा। डॉक्टरोंकी देखरेखके नीचे ऐसे मकान बनाये गये हैं। जहां ठंडी हवामें कांचकी ओटनें सूर्य-किरण सेवन किया जा सकता है।

कई बार फोड़ेका घाव भरता ही नहीं है। पर असे सूर्य-स्नान दिया जाय तो वह भर जाता है।

पसीना लानेके लिए मैंने रोगियोंको ग्यारह बजेकी जलती धूपमें सुलाया है। इससे रोगी पसीनेसे तरबतर हो जाता है। इतनी तेज धूपमें सुलानेके लिए रोगीके सिर पर मिट्टीकी पट्टी रखनी चाहिय। उस पर केलेके या दूसरे बड़े पत्ते रखने चाहिये, जिससे रोगीका सिर ठंडा और सुरक्षित रहे। सिर पर तेज धूप कभी नहीं लेनी चाहिये।

5. वायु – हवा

जैसे पहले तत्त्व उपयोगी हैं वेसे ही यह पांचवां तत्त्व भी उत्यन्त उपयोगी है। जिन पाँच तत्त्वोंका यह मनुष्य-शरीर बना है, उनके बिना मनुष्य टिक ही नहीं सकता। इसलिए वायुसे किसीको डरना नहीं चाहिये। आम तौर पर हम जहां कहीं जाते हैं, वहां घरमें वायु और प्रकाशका प्रवेश बन्द करके आरोग्यको ख़तरेमे डालते हैं। सच तो यह है कि यदि हम बचपनसे ही हवाका डर न रखना सीखे हों, तो शरीरको हवा सहन करनेकी आदत हो जाती है और जुकाम, बलगम इत्यादिसे हम बच जाते है। हवाके प्रकरणमें इस बारेमें लैं लिख चुका हूँ। इसलिए वायुके विषयमें यहां अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं रहती।